नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक

बिगुल

मासिक समाचार पत्र • वर्ष 5 अंक 3
अप्रैल 2003 • तीन रुपये • बारह पृष्ठ

अमेरिका का इराक युद्ध

यह अन्त नहीं!

नयी सदी में साम्राज्यवाद–विरोधी विश्वव्यापी जनसंघर्ष का नया सिलसिला मध्य पूर्व से शुरू होगा और यह जल्दी ही होगा

• सम्पादक मण्डल

पूँजीवादी मीडिया का ''इराक युद्ध'' अब खतम हो चुका है क्योंकि इराक से सम्बन्धित खबरें अब ''बिकाऊ माल'' नहीं रह गयी हैं। बगदाद पर कब्जे के बाद जनरल टॉमी फ्रैंक सद्दाम के महल में कमाण्डरों की बैठक करके दुनिया को निर्णायक विजय के संकेत दे रहे हैं। इराक की बिखरी हुई सैन्य टुकड़ियों का छिटपुट प्रतिरोध जारी है, लेकिन सभी प्रमुख नगरों और तेल–कूपों पर अमेरिकी हमलावरों का कब्जा लगभग कायम हो चुका है। लेकिन इस सच्चाई को पश्चिम के राजनीतिज्ञ भी दबी जुबान से स्वीकार कर रहे हैं कि पूरे देश पर कब्जा कायम करना तथा किसी कठपुतली सरकार को जमा पाना अभी भी एक टेढ़ी खीर है। व्यापक जन प्रतिरोध और छापामार संघर्ष की न सिर्फ आशंकाएँ प्रकट की जा रही हैं, बल्कि अभी से ही इसके स्पष्ट संकेत भी मिलने लगे हैं।

सच्चाई यह है कि जनता की ओर से संघर्ष की शुरुआत तो वास्तव में अब होगी। अभी तक तो दो सत्ताओं और उनकी संगठित सेनाओं के बीच का संघर्ष ही युद्ध का मुख्य पहलू था। अब साम्राज्यवादी हमलावरों और व्यापक जनसमुदाय के बीच संघर्ष युद्ध का मुख्य पहलू होगा। यह अमेरिका के इराक युद्ध का अंत नहीं, बल्कि उसके पहले चरण का समापन है और एक नये चरण की शुरुआत है। यह नया चरण लम्बा होगा। और पूरी सम्भावना यही है कि ''अमेरिका का इराक युद्ध'' ''अमेरिका का अरब युद्ध'' बन जायेगा। इतिहास का सबक यही है और वर्तमान विश्व-राजनीति का अध्ययन भी यही बताता है कि इस युद्ध में अन्ततोगत्वा जीत अरब जनता की ही होगी। अरब धरती पर अमेरिकी साम्राज्यवाद और उसकी पिछलग्गू प्रतिक्रियावादी सत्ताओं की हार पूरे विश्व के स्तर पर जनमुक्ति संघर्ष के एक नये दौर का प्रस्थान-बिन्दु बन जायेगी, इस बात की भरपूर सम्भावना है।

- जनता के वास्तविक प्रतिरोध-संघर्ष की शुरुआत तो अब होगी ! यह प्रतिरोध संघर्ष लम्बा चलेगा।
- यह नया जन सैलाब पूरे अरब जगत में फैल जायेगा और साम्राज्यवादियों के पिछलग्गू सभी अरब शासकों को बहा ले जायेगा !
- फिलिस्तीन मुक्ति-संघर्ष भी अब स्पष्ट तौर पर समूची अरब जनता के साम्राज्यवाद-पूँजीवाद विरोधी संघर्ष की कड़ी बन जायेगा !
- नयी सदी के क्रान्तिकारी तूफान मध्य-पूर्व से उठेंगे, इसकी पूरी सम्भावना है !
- पूरी दुनिया में पूंजीवाद-विरोधी संघर्ष की नयी लहर आगे बढ़ेगी !
- साम्राज्यवादी ताकतों के आपसी अन्तरविरोध दिन-ब-दिन तीखे होते जायेंगे।
- या तो युद्ध क्रान्तियों को जन्म देंगे, या फिर क्रान्तियाँ युद्ध को रोकेंगी, या फिर यह दोनों प्रक्रियाएँ साथ-साथ चलेंगी पूरी दुनिया में!

पूरी दुनिया के अखबारों और टेलीविजन चैनलों ने इस युद्ध को जिस रूप में प्रस्तुत किया उससे यह क्रूर सच्चाई लगभग दृष्टिओझल बनी रही कि यह युद्ध एक अत्यन्त ही बर्बर किस्म का हमला था। अति उन्नत युद्ध तकनीक ने अमेरिकी- ब्रिटिश फौजों की विजय के समय को घटाकर बहुत संक्षिप्त भले ही कर दिया हो, लेकिन पूरे देश में तबाही का मंजर काफी हद तक वियतनाम जैसा ही था। लगातार भीषण बमबारी ने इराक के सभी प्रमुख शहरों को खण्डहर में तब्दील कर दिया। हजारों हताहत रहे। अस्पताल, स्कूल-कालेज, प्रमुख सड़कें-सभी को मटियामेट कर दिया गया। और यही नहीं इतिहास को क्षतिग्रस्त करने में भी अमेरिकी दरिन्दे हिटलर-मुसोलिनी से एक इंच पीछे नहीं रहे। ईसा पूर्व तीन हजार साल पहले तक की मानव-सभ्यता की शिनाख्त करने वाले समृद्ध पुरातात्विक धरोहरों से भरपूर संग्रहालयों को पूरी तरह से लूट लिया गया। मेसोपोटामिया के गौरवशाली इतिहास की सम्पदा को राख कर दिया गया। कला-संग्रहालयों को और पुस्तकालयों को लुटेरे लूट रहे थे और हमलावर चुपचाप खड़े उन्हें न सिर्फ शह दे रहे थे, बल्कि उनमें शामिल थे। सोना और डालर उगलने वाले तेलकूपों की आग तो आनन-फानन में बुझा दी गयी, लेकिन पुस्तकालयों-संग्रहालयों को जलकर राख हो जाने दिया गया। यह कोई नई बात नहीं है। सिकन्दरिया के इतिहास-प्रसिद्ध पुस्तकालय का भी यही

(पेज 6 पर जारी)

पन्तनगर गोलीकाण्ड की पच्चीसवीं बरसी पर

शहीदों के लहू की पुकार सुनो! नया संकल्प लो! आगे आओ!

(बिगुल संवाददाता)

13 अप्रैल, बैसाखी का दिन। अगर गुलाम भारत के गोरे अंग्रेज लुटेरों ने 1919 में पंजाब के जलियावाला बाग में औरतों-बच्चों सहित देश की आम जनता का कत्लेआम किया था, तो आजाद भारत के काले लुटेरे सत्ताधारियों ने 1978 में इसी दिन पन्तनगर की धरती को मेहनतकशों के खून से रंग दिया था। जनरल डायर की देशी दोगली औलादों द्वारा किये गये नृशंस खूनी ताण्डव को आज भी यहाँ की धरती अपने भीतर जज्ब किये हुए है।

नैनीताल की तराई में स्थित पन्तनगर कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय में यह हत्याकाण्ड उस वक्त हुआ था जब आपातकाल के 19 महीने का काला अंधेरा दौर समाप्त हुआ था और ''दूसरी आजादी'' की पीठ पर सवार जनता पार्टी ने देश की बागडोर संभाली थी। यहाँ लम्बे समय से जिल्लत की जिन्दगी जी रहे हजारों मजदूरों-कर्मचारियों ने भी बेहतरी का ख्वाब देखा था। उस वक्त यहाँ एक भारी आबादी 6 रुपये की दिहाड़ी पर खट रही थी। ऐसी विकट स्थिति में यहाँ के मजदूरों-कर्मचारियों ने अपने को संगठित किया और 'पन्तनगर कर्मचारी संगठन' के नाम से इनकी यूनियन अस्तित्व में आई।

दिहाड़ी मजदूरों के नियमितीकरण, बेहतर वेतन, आवास, चिकित्सा, साप्ताहिक अवकाश जैसी बुनियादी माँगों को लेकर यूनियन ने संघर्ष शुरू किया। 28 नवम्बर, 1977 को एक ज्ञापन यूनियन ने प्रशासन को सौंपा। कुलपति के अड़ियल रूख के कारण 11 अप्रैल 1978 से अनिश्चितकालीन हड़ताल शुरू हुई। इस बीच आतंक कायम करने के

(पेज 4 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

आपस की बात

क्रान्तिकारी संगठन का दायित्व क्या है?

कहने के लिए क्रान्तिकारी संगठन लेकिन तौर तरीके बुर्जुआओं जैसे। ऐसा ही एक संगठन यहाँ काम करता है। संगठन बड़ा है लेकिन लोकरंजकता पूर्ण कार्रवाइयों में ऐसा लिप्त है कि तथ्यों को तोड़-मरोड़कर पेश करने से आगे बढ़कर वह गलत तथ्य भी प्रस्तुत करने लगता है। ऐसा ही एक तथ्य मेरे लिए जब एकदम अपाच्य हो गया, तब मैंने काफी सोचने के बाद यह पत्र लिखना तय किया।

'क्रान्तिकारी लोक अधिकार संगठन' नाम का एक क्रान्तिकारी संगठन है। इस संगठन ने अपने कामों की फार्मल रिपोर्टिंग के लिए एक 'गतिविधि बुलेटिन' निकालना शुरू किया। वैसे भी जिस तरह इसमें कामों की रिपोर्टिंग दी जाती है वह इस क्रान्तिकारी संगठन की अपनी पद्धति है और फिलहाल उस पर मैं कुछ कहना नहीं चाहता।

यहाँ होण्डा फैक्ट्री में पिछले साल एक लम्बा आन्दोलन चला। 'गतिविधि बुलेटिन' संख्या-2 में होण्डा आन्दोलन में संगठन द्वारा बढ़-चढ़ कर भागीदारी करने के बारे में लिखा है, फिलहाल इस पर भी हमें कुछ नहीं कहना है। लेकिन बुलेटिन में लिखी इस बात पर, उक्त संगठन के कार्यकर्ताओं ने आन्दोलन के लिए आर्थिक सहयोग जुटाया, आपत्ति है। स्वतन्त्र रूप से आन्दोलन के लिए एक रुपये का भी सहयोग जुटाना तो दूर की बात है, आर्थिक सहयोग जुटाने वाली किसी भी टोली में इनका एक भी कार्यकर्ता कभी शामिल नहीं रहा है। फिर इसे अपनी उपलब्धि के तौर पर गिनाने का क्या औचित्य है?

यहाँ हम एक और बात कहना चाहेंगे कि इस इलाके में जहाँ तक हमारी पहुँच हो सकती है, हम हर मजदूर आन्दोलन में क्षमतानुसार भागीदारी करते हैं, बल्कि यथासंभव आर्थिक सहयोग भी जुटाते हैं। हम समझते हैं कि यह हमारा क्रान्तिकारी दायित्व है। हम समझते हैं कि इसे गिनाना या उपलब्धि के रूप में प्रचारित करना तो इस मिशन को ही बेइज्जत करना होगा। जो काम आपने किया ही नहीं, उसे गिनाना तो और भी भयानक है। मेरे ख्याल से कार्यकर्ताओं को भी उत्साहित करने का तरीका राजनीतिक व वैचारिक होता है, न कि तकनीकी।

अमर सिंह

रुद्रपुर (ऊधमसिंह नगर)

मज़दूरों के पेट पर लात मार मालिकान ने जश्न मनाया

मैं पंजाब के डेराबशी कस्बे में स्थित 'इण्ड स्विफ्ट लेबोरेटरी लि.' नामक कम्पनी में दो वर्ष से काम कर रहा हूँ। यह चण्डीगढ़ के समीप है। कम्पनी में 6-7 बड़े-बड़े प्लाण्ट हैं और ये 70-80 बीघे में फैले हैं। यह इलाके की 'नम्बर वन' कम्पनियों में से एक है। यहाँ अलग-अलग प्लाण्टों में अलग-अलग प्रकार की फैक्सा, बीटा, अटोखा जैसी महँगी दवाइयाँ तैयार की जाती हैं। यहाँ दवाइयों का पाउडर तैयार होता है जिसकी कीमत दस हजार रुपये से लेकर एक-डेढ़ लाख रुपये प्रति किलो तक होती है। यहाँ के अलावा कम्पनी के पंचकूला और परमाणु में भी प्लाण्ट हैं। वहाँ पाउडर से टेबलेट बनता है। इस उद्योग में मालिकान मजदूरों का खून निचोड़कर खूब मुनाफा पीट रहे हैं। केवल डेराबशी वाली कम्पनी में हर महीने करीब आठ करोड़ रुपये का मुनाफा होता है।

इस फैक्ट्री में 500 के आसपास मजदूर हैं। 100 मजदूर ही परमानेण्ट हैं। दिहाड़ी मजदूरों की हालत बहुत खराब है। रोज गेट पर खड़े दिहाड़ी मजदूरों में से जरूरत भर को 'एंट्री' देकर बाकी को भगा दिया जाता है। ज्यादातर मजदूर दूर-दूर के इलाकों से जैसे यू.पी., बिहार, हिमाचल, उत्तरांचल और नैपाल के हैं। 'लोकल' को तो रखा ही नहीं जाता है।

फैक्ट्री में जो दवाइयाँ बनती हैं, उनको बनाने के दौरान खतरनाक केमिकल्स का प्रयोग होता है। जैसे कि *ब्रोमीन*–जो चमड़ी को जलाती है और आँखों में बहुत तेज लगती है, यहाँ तक कि अन्धा भी कर सकती है। *तेजाब*–शरीर के जिस हिस्से पर गिरेगा, उसे जला डालेगा। *लिक्विड नाइट्रोजन*–इसका तापमान बहुत ठण्डा होता है, शरीर के जिस हिस्से पर गिरता है, उसे कटवाना ही पड़ता है, नहीं तो धीरे-धीरे पूरे शरीर में फैल जायेगा और शरीर को नष्ट कर देगा। *अमोनिया*–अगर लग गई तो दिल और दिमाग पर सीधे 'अटैक' कर सकती है। ऐसे ही कई और खतरनाक केमिकल्स हैं–एम डी सी, डी एन एस, एच सी एल, कार्बन, कास्टिक सोडा आदि–जिनका शरीर पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। इन कैमिकल्स से भरे ड्रमों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना, एक ड्रम से दूसरे ड्रम में खाली करना, एक कैमिकल को दूसरे में मिलाना आदि में आग लगने का खतरा लगातार बना रहता है।

एक बार एक वर्कर जल गया, किसी तरह उसे बचा लिया गया। वह कम्पनी का परमानेण्ट मजदूर था, इसलिए कम्पनी ने उसके इलाज का खर्च उठा लिया। इसके कुछ दिनों बाद ही एक नेपाली दिहाड़ी मजदूर की आँख में कास्टिक गिर गया। जब उसका इलाज कराने की बात आयी तो कई सवाल खड़े कर दिये गये। उस मजदूर ने अपने ही पैसों से इलाज कराया। गनीमत थी कास्टिक बहुत कम मात्रा में था और पानी मिला हुआ था। तब भी तीन-चार महीने में जाकर आँख ठीक हुई। उस समय प्लाण्ट के 500 वर्करों में से करीब अस्सी के पास ही सुरक्षा उपकरण थे, जब कि सबके पास ये होने चाहिए।

यहाँ मजदूरों से खूब ओवरटाइम कराया जाता है और उसमें जबर्दस्ती भी की जाती है। अगर मजदूर मना करे तो उसे अगले ही दिन गेट से वापस कर दिया जाता है। भारी वजन उठाने का काम यहाँ काफी करना पड़ता है। महीने भर इतनी मशक्कत करने के बाद 1800 रुपये मिलते हैं। यदि मजदूर महीने में चार छुट्टी कर ले तो सिर्फ 1560 रुपये मिलते हैं। फिर भी इन खतरनाक केमिकल्स के बीच मजदूर काम करते हैं–दो वक्त की रोटी के लिए।

मुनाफाखोर कैसी-कैसी नौटंकियाँ करते हैं कि आदमी देख के दंग रह जाये। जब बोनस यानी दीपावली या फिर एग्रीमेण्ट का माह यानी अप्रैल करीब होता है तो कम्पनी में हल्ला होने लगता है कि अबकी बार बहुत नुकसान हो गया है। मजदूरों की छँटनी होने लगती है। ओवरटाइम को रोक दिया जाता है। उन दिनों वे सभी को गुस्से से बोलते हैं। कम समय में ज्यादा काम करने का दबाव डालते हैं।

यही नहीं, मालिकान और उनके गुर्गे कम्पनी को नजर लग जाने का ढिंढोरा पीटने लगते हैं। बाकायदा तांत्रिक और पण्डितों को बुलवाकर झाड़ फूँक का भी कार्य कराते हैं। ऐसा ही एक वाकया मेरे साथ हुआ। एक दिन शाम के समय एक अफसर ने मुझे कुछ काम करने के लिए कुलवाया। मैं प्लास, छेनी, हथौड़ा, पेंचकस लेकर पहुँचा। मुझे मालिक के पी.ए. के साथ भेजा गया। मैंने झिझकते हुए उससे पूछा कि कहाँ जा रहे हैं, क्या करना है? पी.ए. ने कहा कि मेन गेट पर कुछ काम है। मेरे और पूछने पर उसने बताया कि कम्पनी को किसी की नजर लग गई है। नजर उतारने वाले ने कुछ कीलें दी हैं जिन्हें मेन गेट पर अन्दर से कई जगह गाड़ना है और एक पुड़िया सिन्दूर है, उसे कम्पनी के चारों तरफ फेंकना है। यदि सब ठीक हो गया तो तुम सभी लोगों को अच्छा पैसा मिलेगा।

इस घटना के करीब महीने भर बाद कम्पनी में एक जोरदार जश्न मनाया गया। मजदूरों को भी ब्रेड पकौड़े, बर्फी और चाय की दावत दी गयी। दावत के समय कम्पनी मालिक ने बताया कि पिछले माह कम्पनी को दो लाख का अलग से फायदा हुआ है और माल ज्यादा बिक रहा है। कई मजदूरों के पेट पर लात मारकर मालिक यह जश्न मना रहा था।

भूपेन्द्र सिंह

डेराबशी, पंजाब

मदमत्त बूढ़े हाथी का दलदल की ओर एक और कदम

विश्व जनमत अन्तर्राष्ट्रीय कानून और संयुक्त राष्ट्र संघ को धता बताते हुए इराक पर आक्रमण कर अमेरिका ने अपनी दादागिरी की पराकाष्ठा का ही परिचय दिया है। इराक तो पहले से ही आक्रमण झेल रहा है, वहाँ के निवासियों का अमेरिका पहले ही बुरा हाल कर चुका है और अब उसने अपनी आँखों की पैशाचिक प्यास बुझाने के लिए व्यापक विनाशलीला प्रारम्भ कर दी है। अमेरिका पूरे विश्व में लाखों लाख बेगुनाहों के कत्ल का गुनहगार है। अमरीकी सरकारों ने विगत पांच दशकों में तृतीय विश्व के लाखों लोगों को अपना शिकार बनाया है। यही नहीं, अमरीकी विदेश नीति का इतिहास बताता है कि कम्युनिज्म से लड़ने के नाम पर सी.आई.ए. ने करीब पचास देशों की निर्वाचित सरकारों को डांवाडोल कर दिया और उखाड़ फेंका। लेकिन इस बार पूरा विश्व अमेरिकी दादागिरी के विरोध में खड़ा हो गया है। इस युद्ध को लेकर खुद साम्राज्यवादी देशों के शिविर में दरार पड़ गयी है। टोनी ब्लेयर को ब्रिटेन में भारी विरोध का सामना करना पड़ रहा है। रॉबर्ट कुक के अलावा दो और मंत्री इस्तीफा दे चुके हैं। फ्रांस और जर्मनी की सरकारें पहले ही युद्ध की खिलाफत कर चुकी हैं। इतिहास में हर युद्ध के बाद ही युद्ध के खिलाफ आवाज उठती थी, यह पहला अवसर है जब युद्ध से पहले दुनिया के हजारों शहरों में करोड़ों लोग विरोध प्रदर्शन कर रहे हैं। खुद अमेरिकी लोग भी इसके खिलाफ हैं। चालीस से अधिक अमरीकी नोबेल पुरस्कार विजेताओं ने जार्ज बुश के नाम एक संयुक्त अपील में कहा कि अमरीकी जनता के नाम पर यह युद्ध न लड़ें। युद्ध के खिलाफ एकत्रित विश्व जनमत की सुन्दर भविष्य की स्वर्ण किरण है। युद्ध होने की स्थिति में युद्ध खत्म करने की आवाज बुलंद करनी चाहिये। आज विश्व के जीवित नेताओं में सर्वाधिक सम्मानित नेल्सन मण्डेला को खुलकर कहना पड़ा है कि अमेरिकी नीतियां विश्व शान्ति के लिए खतरा बन चुकी है। मानवाधिकारों का ठेकेदार अमेरिका खुद मौत का सौदागर बन चुका है। भारत सरकार को भी गोलमोल बयान देने की बजाय खुलकर अमेरिकी नीतियों का विरोध करना चाहिये। अमेरिका से भारत को किसी भी प्रकार का हित नहीं होने वाला है, उल्टे हर महत्वपूर्ण मौके पर अमेरिका ने भारत के खिलाफ ही अपनी राय दी है।

इराक पर युद्ध का भारत की जनता पर भी अत्यन्त प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। मिट्टी का तेल, डीजल, पेट्रोल, रसोई गैस और ज्यादा महंगी हो जायेंगी, इन वस्तुओं की जमाखोरी और कालाबाजारी को बढ़ावा मिलेगा लेकिन इन सबसे बेखबर भारत सरकार अपने विदेशी मुद्रा भण्डार को देखकर अपनी पीठ थपथपाने में ही व्यस्त है। अगर युद्ध कुछ लम्बा खिंच गया होगा तो निश्चित रूप से अगले बजट में या उससे पूर्व भी युद्ध के नाम पर जनता के ऊपर लादा जा सकता है। अमेरिका के लिये यही कहना उपयुक्त होगा 'चलिये संभल के होश में अपना भी सोचिये, मिट्टी में मिल गये हैं कई कल के बादशाह।' अमेरिका के खिलाफ यह अभूतपूर्व वैश्विक लामबंदी अमेरिकी चौधराहट के खात्मे की शुरुआत साबित हो सकती है।

- मनोज कुमार गुप्ता

भारतीय जीवन बीमा निगम, रामपुर (उ.प्र.)

बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियां

1. 'बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मजदूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मजदूर आंदोलन के इतिहास और सबक से मजदूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूंजीवादी अफवाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मजदूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मजदूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'बिगुल' मजदूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूंजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिनवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाजों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की कतारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'बिगुल' मजदूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

'बिगुल'

सम्पादकीय कार्यालय : 69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006

सम्पादकीय उप कार्यालय : जनगण होम्यो सेवासदन मर्यादपुर, मऊ

दिल्ली सम्पर्क : सत्यम वर्मा, 81, समाचार अपार्टमेन्ट मयूर विहार, फेज-1 दिल्ली-91

मूल्य - एक प्रति -रु. 3/-

वार्षिक - रु. 40.00 (डाक व्यय सहित)

'बिगुल'

'जनचेतना' की सभी शाखाओं पर उपलब्ध

1. डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020
2. जनचेतना स्टाल, काफी हाउस बिल्डिंग, हजरतगंज, लखनऊ (शाम 4:00 से 7:00 बजे तक)
3. जाफ़रा बाजार, गोरखपुर -273001
4. 989, पुराना कटरा, यूनिवर्सिटी रोड, मनमोहन पार्क, इलाहाबाद

मेहनतकश साथियों के लिए कुछ जरूरी पुस्तकें

- कम्युनिस्ट पार्टी का संगठन और उसका ढांचा- लेनिन 5/-
- मकड़ा और मक्खी- विल्हेल्म लीब्कनेख्त 3/-
- ट्रेड यूनियन काम के जनवादी तरीके-सर्जी रोस्तोवस्की 3/-
- अनश्वर हैं सर्वहारा संघर्षों की अग्निशिखाएं 10/-
- समाजवाद की समस्याएं, पूंजीवादी पुनर्स्थापना और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति 12/-
- क्यों माओवाद? 10/-
- मई दिवस का इतिहास 5/-
- अक्टूबर क्रान्ति की मशाल 12/-
- पेरिस कम्यून की अमर कहानी 10/-
- बुर्जुआ वर्ग पर सर्वतोमुखी अधिनायकत्व लागू करने के बारे में 5/-

बिगुल विक्रेता साथी से मांगें या इस पते पर 19 रुपये रजिस्ट्री शुल्क जोड़कर मनीआर्डर भेजें :

जनचेतना, डी-68, निरालानगर, लखनऊ

इतिहास के पन्नों से

आर. लैण्डर एक बुर्जुआ पत्रकार था जो अमेरिका के एक अखबार **'न्यूयार्क वर्ल्ड'** का संवाददाता था। वैज्ञानिक समाजवाद के प्रवर्तक और विश्व मजदूर आन्दोलन के महान नेता **कार्ल मार्क्स** का यह साक्षात्कार उसने पेरिस कम्यून के तीन माह बाद, 3 जुलाई 1871 को लन्दन में लिया था। यह ऐतिहासिक साक्षात्कार कार्ल मार्क्स के ओजस्वी व्यक्तित्व और प्रखर विचारों के साथ ही इस स्थिति पर भी रोशनी डालता है कि बुर्जुआ पत्र-पत्रिकाएँ किस प्रकार कम्युनिज्म और कम्युनिस्टों को हौव्वा बनाकर उस समय भी तरह-तरह की अफवाहें और भ्रान्तियाँ फैलाया करती थीं। यह साक्षात्कार प्रथम इण्टरनेशनल के दौर में यूरोपीय मजदूर आन्दोलन के प्रथम उठान के समय की ऐतिहासिक परिस्थितियों पर भी एक हद तक रोशनी डालता है। इस साक्षात्कार का अनुवाद हिन्दी के सुप्रसिद्ध मार्क्सवादी आलोचक **मैनेजर पाण्डेय** ने किया है। यह साक्षात्कार उन्हीं के द्वारा सम्पादित, साक्षात्कारों एवं आलेखों के संकलन **'संकट के बावजूद'** से लेकर **'बिगुल'** के पाठकों के लिए यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

-सम्पादक

पूंजी के खिलाफ श्रम का विद्रोह

(आर. लैंडर का कार्ल मार्क्स से साक्षात्कार)

लंदन, 3 जुलाई 1871। आपने अंतर्राष्ट्रीय मजदूर संगठन (इंटरनेशनल) के संबंध में कुछ जानकारी प्राप्त करने के लिए कहा है और मैंने इसके लिए कोशिश की है। यहाँ इस समय ऐसी कोशिश करना भी काफी मुश्किल काम है। यह सच है कि लंदन इस संगठन का केन्द्र है, लेकिन अंग्रेज लोग इससे आतंकित हैं और जैसे भीषण बारूद षड्यंत्र के बाद सम्राट जेम्स को हर चीज से बारूद की गंध आती थी वैसे ही आजकल अंग्रेजों को हर चीज में इंटरनेशनल की छाया दिखाई देती है।[1] निश्चय ही आशंका के बावजूद समाज की चेतना विकसित हुई है और अगर संगठनकर्ताओं के पास कुछ निजी रहस्य हैं तो वे उन रहस्यों को छुपाने में कामयाब भी हुए हैं। मैं संगठन के नेताओं से मिल चुका हूँ, मैंने उनसे खुली चर्चा भी की है और अपनी बातचीत का सारांश आपको भेज रहा हूँ। मैं यह निस्संदेह कह सकता हूँ कि यह वास्तविक मजदूरों का सही संगठन है, लेकिन ये मजदूर दूसरे वर्ग के राजनीतिक और सामाजिक विचारों से संचालित हो रहे हैं। संगठन की परिषद के एक प्रमुख सदस्य से मैं मिला। वह अपने काम की बैंच पर बैठा हुआ था और हमारी बातचीत के बीच-बीच में पड़ोस में रहने वाले अपने छोटे मालिक की कड़ी शिकायत सुनने के लिए बार-बार उठकर जाता था। इसी व्यक्ति को आम जनता की सभाओं में शासक वर्ग के खिलाफ घृणा से भरे जोरदार भाषण देते मैंने सुना और देखा है। इस व्यक्ति के घरेलू जीवन से परिचित होने के बाद ही मैंने इसके भाषण में छिपी वास्तविकता को ठीक से पहचाना और उसका अर्थ समझा। यह व्यक्ति निश्चय ही ऐसा महसूस करता होगा कि उसमें मजदूरों की सरकार संगठित करने की क्षमता है, लेकिन यहाँ उसे घिनौने यांत्रिक पेशे में जीवन खपाना पड़ रहा है। वह स्वाभिमानी और संवेदनशील व्यक्ति लगता था, लेकिन उसे अपने मालिक की हर झिड़की पर झुकना पड़ता था और हर हुक्म पर मुस्कराना पड़ता था; उसकी यह जी हजूरी एक शिकारी कुत्ते की आज्ञाकारिता के समान थी। इस व्यक्ति से मिलने पर मुझे इंटरनेशनल के एक पहलू की जानकारी मिली। पूँजी के खिलाफ मजदूरों का विद्रोह जगाने वाले के बारे में मैं जान सका तथा मुझे उत्पादन करने वाले मजदूर वर्ग तथा शोषण करने वाले दलाल वर्ग के संबंधों की भी जानकारी मिली। इस व्यक्ति के रूप में एक ऐसे कर्मठ व्यक्ति के दर्शन हुए जो मौका मिलते ही करारी चोट कर सकता था और कार्ल मार्क्स से मिलने पर एक ऐसे दिमाग के बारे में जानकारी मिली जो सोच विचार कर सही योजनाएँ बनाने में अत्यंत सक्षम था।

'डॉ. कार्ल मार्क्स दर्शन के आचार्य हैं।' उनमें सामाजिक जीवन के सम्यक निरीक्षण और स्वाध्याय से उत्पन्न ज्ञान की जर्मन व्यापकता है। मैं कह सकता हूँ कि साधारण अर्थ में वह कभी भी मजदूर नहीं रहे हैं। वह अपने रहन-सहन और रूप-रंग से मध्य वर्ग के संपन्न व्यक्ति-से लगते हैं। रात में बातचीत के लिए जिस बैठक में मुझे बैठाया गया, उसको देखकर यह कहा जा सकता है कि वह एक संपन्न व्यक्ति के रहने लायक है। वह बैठक सुख-सुविधा संपन्न तो थी ही, उसे देखकर उसमें रहने वाले व्यक्ति की सुरुचि और संपन्नता का भी पता लगता था। लेकिन कार्ल मार्क्स के व्यक्तित्व की खास विशेषताओं से उसका कोई मेल नहीं बैठता था। कमरे में राइन नदी के दृश्य का जो मोहक चित्र था, उससे इस व्यक्ति की राष्ट्रीयता का पता लगता था। कोने में मौजूद मेज पर रखे फूलदान में मैंने सावधानी से झाँका कि कहीं उसमें बम तो नहीं रखा है। मैंने उसमें पेट्रोल सूँघने की भी कोशिश की। लेकिन वहाँ तो केवल गुलाब की सुगंधि थी। मैं धीरे से सरक कर अपनी जगह पर बैठ गया और 'जो भी हो' की मनोदशा में खराब से खराब स्थिति का इंतजार करने लगा।

वह (मार्क्स) बैठक में आए। उन्होंने स्नेह से मेरा स्वागत किया। हम आमने-सामने बैठ गए। अब मैं क्रान्ति के अवतार, इंटरनेशनल के संस्थापक तथा मार्गदर्शक और पेरिस कम्यून के पक्षधर के आमने-सामने हूँ। मैं उस व्यक्ति के सामने हूँ जिसने यह घोषणा की थी कि अगर पूँजी ने श्रम के खिलाफ लड़ाई शुरू की तो उसे पूरी तरह बर्बाद होना पड़ेगा। मार्क्स को देखकर उस सुकरात की याद आती है जिसने अपने जमाने के महाप्रभुओं में अपनी आस्था प्रकट करने के बदले शहीद होना बेहतर समझा था। सुकरात के आकर्षक और प्रभावशाली मुखमंडल को याद कीजिए–क्रमशः नीचे की ओर गहरा होता हुआ ललाट, जिसका निचला हिस्सा नाक तक थोड़ा-सा चिपटा और नुकीली नाक। सुकरात की इस आवक्ष मूर्ति की कल्पना कीजिए, दाढ़ी के बालों को काले रंग में रंग दीजिए और उसमें जहाँ-तहाँ भूरे रंग की लकीरें खींच दीजिए, और अब इस सिर को एक मझोले कद के शानदार धड़ पर रख दीजिए। देखिए, फिर डॉ. मार्क्स आपके सामने खड़े हैं, अगर आप इस चेहरे के ऊपरी हिस्से को एक कपड़े से ढक दीजिए तो आपके सामने एक जन्मजात पादरी होगा। अगर आप चेहरे के ऊपरी हिस्से से कपड़ा हटा दीजिए ताकि गहरी विशाल भौंहें दिखाई दें तो आपका सामना ठोस धातुओं से बने एक विकट व्यक्ति से होगा। यह व्यक्ति ऐसा स्वप्नदर्शी है जो चिंतन करता है और ऐसा चिंतक है जो सपने भी देखता है।

डॉ. मार्क्स के साथ एक दूसरा व्यक्ति भी है जो शायद जर्मन ही है, लेकिन वह इतनी अच्छी अंग्रेजी जानता है कि यह कहना मेरे लिए मुश्किल है कि वह जर्मन है या अंग्रेज।' क्या वह व्यक्ति इस अंतरंग वार्ता में मार्क्स का गवाह था? मैं समझता हूँ यही बात थी। परिषद' इस भेंटवार्ता के बारे में सूचना मिलने पर मार्क्स से इस संबंध में पूछताछ कर सकती है क्योंकि क्रांति हर चीज से अधिक महत्वपूर्ण है; क्रांतिकारी भी शंका से परे नहीं है।

बातचीत शुरू करते ही मैं सीधे अपने काम की बात पर आया। मैंने कहा, "दुनिया इस इंटरनेशनल के बारे में बहुत कम जानती है। बहुत से लोग इससे घृणा तो करते हैं, लेकिन वे यह नहीं जानते कि वे किस चीज से घृणा करते हैं। जिनका दावा है कि वे इस संस्था के बारे में दूसरों से अधिक जानते हैं उनका कहना है कि जेनस की तरह इस संस्था के भी दो चेहरे हैं, जिनमें एक पर सही और ईमानदार मजदूर की मुस्कराहट है और दूसरे चेहरे पर हत्यारे और षड्यंत्रकारी की क्रोध भरी आँखें हैं। इस धारणा में जिस रहस्य का जिक्र है, उस पर आप कुछ प्रकाश डालेंगे?"

डॉ. मार्क्स हँस पड़े। यह जानकर कि हम लोग उनसे इतना डरते हैं एक हल्की सी दबी हुई मुस्कराहट उनके चेहरे पर दौड़ गई, ऐसा मुझे लगा। उन्होंने अपनी परिष्कृत मातृभाषा में कहना शुरू किया, "महाशय, यहाँ कोई ऐसा रहस्य है ही नहीं जिस पर प्रकाश डालना जरूरी हो। हाँ, उन लोगों की स्वाभाविक मूर्खता के बारे में कुछ कहना जरूरी है। जो बराबर इस तथ्य की उपेक्षा करते हैं कि हमारा संगठन आम जनता का एक खुला संगठन है और इसकी कार्यवाई की पूरी रिपोर्ट उन सब लोगों के लिए छपती रहती है जो उसे पढ़ने का कष्ट करते हैं। आप एक 'पेनी' में हमारी नियमावली खरीद सकते हैं और अगर आप हमारे पैंफलेट के लिए एक 'शिलिंग' खर्च करें तो आप हमारे बारे में लगभग उतना जान जाएँगे जितना अपने बारे में हम जानते हैं।"

लैंडर: लगभग! यही न! आप ठीक कह रहे हैं! शायद ऐसा हो। लेकिन क्या ऐसा नहीं हो सकता कि जो कुछ थोड़ा-सा मैं नहीं जान पाऊँगा वही सबसे अधिक महत्वपूर्ण हो। अगर मैं आपसे साफ-साफ कहूँ, और जैसा एक बाहर से देखने वाले को लगता है वैसा ही कहूँ, तो क्या आपकी निन्दा की चारों ओर फैली हुई इस आम धारणा का मतलब केवल भीड़ का मूर्खतापूर्ण विद्वेष ही है या और कुछ? मुझे लगता है कुछ और भी होना चाहिए। आपने जो कुछ कहा है उसके बावजूद यह पूछना उचित जान पड़ता है कि यह इंटरनेशनल क्या है।

मार्क्स: यह जानने के लिए आपको इसके सदस्यों यानी मजदूरों को जानना होगा।

लैंडर: हाँ, लेकिन यह जरूरी नहीं है कि सिपाही उस शासन कला का व्याख्याकार भी हो जिससे वह संचालित होता है। मैं आपकी संस्था के कुछ सदस्यों को जानता हूँ और मुझे विश्वास है कि वे षडयंत्रकारियों जैसे नहीं हैं। इसके अलावा अगर किसी रहस्य को लाखों लोग जानते हों तो उसे रहस्य नहीं कहा जा सकता। लेकिन अगर ये लोग किसी अत्यंत कर्तव्यनिष्ठ गुप्त संस्था के मजबूत साहसी हाथों के हथियार मात्र हों, तो क्या कहा जाएगा?

मार्क्स: इस बात का कोई प्रमाण नहीं है?

लैंडर: क्या हाल का पेरिस विद्रोह इसका प्रमाण नहीं है।

मार्क्स: सबसे पहले मुझे इसका सबूत दीजिए कि पेरिस में षडयंत्र जैसी कोई चीज थी। साथ ही यह भी साबित करना होगा कि वहाँ जो कुछ भी हुआ वह सब वहाँ की तात्कालिक परिस्थितियों का न्यायोचित परिणाम नहीं था। अगर यह मान भी लिया जाए कि वहाँ कोई षडयंत्र हुआ था तो उसमें इंटरनेशनल का भी हाथ था, इसका क्या सबूत है?

लैंडर: कम्यून की कई समितियों व संस्थाओं में इंटरनेशनल के अनेक सदस्यों का सक्रिय होना।

मार्क्स: तब तो यह गुप्त संसदवालों (Free masons) का भी विद्रोह था, क्योंकि व्यक्तिगत रूप से उनके कार्यों का इस प्रसंग में कम महत्व नहीं है। मुझे आश्चर्य नहीं होगा अगर पोप इस विद्रोह की पूरी जिम्मेदारी उनके ऊपर डाल दे। एक दूसरी व्याख्या देखिए। पेरिस का विद्रोह वहां के मजदूरों का विद्रोह था। यह जाहिर है कि उन मजदूरों में जो सबसे अधिक योग्य थे, वे मजदूर इंटरनेशनल के भी सदस्य थे। इसके बावजूद हमारा संगठन उस विद्रोह के लिए सीधे जिम्मेदार नहीं माना जाएगा।

लैंडर: लेकिन इसके विपरीत दुनिया को ऐसा लग रहा है कि पेरिस विद्रोह में इंटरनेशनल का हाथ था। यह भी कहा जाता है कि लंदन से गुप्त आदेश पेरिस भेजे गए, यहाँ तक कि धन भी भेजा गया। क्या यह सच नहीं हो सकता कि संगठन की गतिविधियों के इस खुलेपन का आयोजन संदेशों के रहस्य को छुपाने के लिए है?

मार्क्स: क्या आज तक कोई भी संगठन बिना आम और खास एजेंसियों की सहायता के काम कर सका है? लेकिन किसी पोप के प्रभुत्व के केन्द्र से जारी किए जाने वाले आस्था और आचरण संबंधी आदेशों की तरह लंदन से भेजे गये गुप्त आदेशों के षडयंत्रों की बात करना वास्तव में इंटरनेशनल के स्वरूप को पूरी तरह गलत समझना है। इसका अर्थ यह भी होगा कि इंटरनेशनल एक केन्द्रित किस्म की सरकार है, जबकि इसका वास्तविक स्वरूप ऐसा है जिसमें स्थानीय क्रियाशीलता और स्वतंत्रता को सर्वाधिक महत्व मिलता है। वास्तव में इंटरनेशनल मजदूर वर्ग की कोई सरकार है ही नहीं। यह नियंत्रण की शक्ति नहीं, एकता पैदा करने वाली संस्था मात्र है।

लैंडर: और इस एकता का उद्देश्य क्या है?

मार्क्स: राजनीतिक शक्ति पर विजय प्राप्त करके मजदूर वर्ग की आर्थिक मुक्ति लाना। उस राजनीतिक शक्ति का सामाजिक उद्देश्यों के लिए प्रयोग करना। यह आवश्यक है कि हमारे लक्ष्य इतने व्यापक हों कि उनमें मजदूर वर्ग की सभी तरह की गतिविधियों को शामिल किया जा सके। अपने लक्ष्यों को सीमित करके एक खास रूप देने का मतलब होगा कि उन्हें मजदूरों के एक वर्ग या एक राष्ट्र के मजदूर वर्ग की आवश्यकताओं के ही अनुकूल बना देना। लेकिन कुछ लोगों के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए पूरे मजदूर वर्ग को कैसे संगठित किया जा सकता है? ऐसा करने से हमारे संगठन का अंतर्राष्ट्रीय चरित्र नष्ट हो जाएगा। यह संगठन राजनीतिक आंदोलनों के स्वरूप को निर्धारित नहीं करता, यह केवल आंदोलनों के उद्देश्यों के प्रति वफादारी को ही जरूरी समझता है। यह दुनिया भर में फैले हुए मजदूर संगठनों से संबंधित है। दुनिया के हर हिस्से के मजदूर वर्ग की कुछ समस्याओं का अपना विशेष रूप होता है और वहाँ के मजदूर अपने समस्याओं को अपने ढंग से हल करने की कोशिश करते हैं। बर्लिन, लंदन, बार्सिलोना और न्यूकैसल्स के मजदूरों के संगठन पूरी तरह एक जैसे नहीं हो सकते। उदाहरण के लिए, इंग्लैंड के मजदूरों के लिए शक्ति प्रदर्शन का रास्ता खुला हुआ है। जहां शांतिपूर्ण आंदोलन मजदूर वर्ग के उद्देश्यों को पूरा करने में शीघ्र और निश्चित रूप से कारगर हों, वहां विद्रोह करना पागलपन ही है। फ्रांस में वर्गों के तीव्र आपसी वैमनस्य और दमनकारी कानूनों के कारण ही हिंसात्मक सामाजिक संघर्ष अनिवार्य हो गया। अपनी समस्याओं के हल के लिए साधनों का चुनाव करना हर देश के मजदूर वर्ग का अपना मामला है। इस संबंध में इंटरनेशनल किसी तरह के आदेश या सलाह देने की कोशिश नहीं करता है। लेकिन हमारा संगठन अपने नियमों की सीमा में रहकर हर जनांदोलन को सहानुभूति और सहायता देता है।

लैंडर: यह सहायता किस तरह की होती है?

मार्क्स: एक उदाहरण लीजिए–मजदूरों की आर्थिक मुक्ति के आंदोलन का एक सबसे प्रचलित

(पेज 5 पर जारी)

उत्तरांचल में अब अंशकालिक नियुक्तियों पर भी रोक

"विकास पुरुष" द्वारा राज्य को बेरोजगारी का एक और तोहफा

उत्तरांचल की कांग्रेसी सरकार ने एक आदेश पारित करके प्रदेश के सभी विभागों में तदर्थ/ सॉविदा/ नियत वेतन/ दैनिक वेतन आदि सभी प्रकार की नियुक्तियों पर रोक लगा दी है। इससे पूर्व नवगठित इस राज्य की भाजपा सरकार द्वारा स्थायी नौकरियों पर पहले ही रोक लगायी जा चुकी थी।

राज्य के सचिवालय द्वारा सभी विभागों के लिए जारी शासनादेश में स्पष्ट रूप से लिखा है कि श्रेणी 'ग' तथा श्रेणी 'घ' के किसी भी पद पर दैनिक वेतन/ तदर्थ/ सॉविदा/ नियत वेतन आदि प्रकार के अस्थायी पदों पर नियुक्तियों पर पूर्ण रूप से प्रतिबन्ध रहेगा। यदि अपरिहार्य परिस्थितियों में ऐसी किसी नियुक्ति की जरूरत पड़ी तो कार्मिक विभाग की सहमति के बाद मंत्री परिषद से अनुमोदन कराना पड़ेगा। यह नियुक्ति भी अल्पकालिक होगी। आदेश में यह धमकी दी गयी है कि इसका उल्लंघन करने पर वेतन देने वाले अधिकारी से उसे वसूला जायेगा और उसके खिलाफ प्रशासनिक कार्रवाई भी की जायेगी। आदेश में यह भी लिखा है कि ऐसी नियुक्ति करने वाले अधिकारी की चरित्र पंजिका में प्रतिकूल प्रविष्टि दर्ज की जायेगी।

आदेश में विशेष परिस्थिति में की गयी ऐसी नियुक्ति को लंबे समय तक न चलाने का स्पष्ट निर्देश है। पत्र में यहाँ तक लिखा है कि "ऐसी अनियमित नियुक्तियों को लम्बे समय तक बनाए रखने पर विनियमितीकरण की माँग उठती है जिससे सेवा सम्बन्धी मामलों में प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।"

यह आदेश राज्य के "विकास पुरुष" मुख्यमंत्री नारायण दत्त तिवारी का राज्य के बेरोजगारों को एक और "तोहफा" है। पिछले ढाई वर्षों के दौरान भाजपा के दो मुख्य मंत्रियों और कांग्रेस के एक मुख्यमंत्री ने प्रदेश की बागडोर संभाली। इस दौरान पहले से सीमित सरकारी नौकरियों के रास्ते अब लगभग बन्द हो चुके हैं।

जिन आकांक्षाओं के साथ उत्तराखंड की जनता ने नया राज्य बनाने के लिए संघर्ष किया, कुर्बानियाँ दी, राज्य बनने के साथ ही वह धूल-धूसरित होता चला गया। राज्य बनने के साथ ही नौकरियों के रास्ते बन्द होते चले गए। 'शिक्षा मित्र', 'शिक्षा बन्धु', 'गेस्ट फेकेल्टी' आदि खूबसूरत नामों से अनुबन्ध या ठेके पर होने वाली नियुक्तियों पर सरकार ने अब रोक लगा दी है। राज्य गठन के बाद से यहाँ के सार्वजनिक व निजी क्षेत्र के उद्योगों की बन्दी एवं पलायन का क्रम जारी है। सलोरा, नैना सेमी कण्डक्टर, ऊषा व प्रकाश ग्रुप के कारखानों जैसे तमाम कारखाने मजदूरों को धोखा देकर भाग चुके हैं और कई पलायन की तैयारी में हैं। राज्य की सार्वजनिक क्षेत्र की सबसे बड़ी दवा निर्माता कम्पनी आई. डी. पी. एल. बन्द हो चुकी है। काशीपुर-जसपुर की दोनों कताई मिलें बन्द पड़ी हैं और वहाँ मजदूर भूखमरी की स्थिति में जा पहुँचे हैं। एच. एम. टी. फैक्ट्री व चीनी मिलें अपनी अन्तिम साँसें गिन रही हैं। सरकार के इस ताजा निर्णय ने यह साफ कर दिया है कि वह पूरे देश में जारी 'रोजगार विहीन विकास' के ही मार्ग पर चल रही है।

कांग्रेस का राज्य के दो लाख बेरोजगारों को रोजगार देने का आश्वासन महज चुनावी नारा साबित हो रहा है और यही सच्चाई है। आम जनता को इस सच्चाई को समझना होगा।

—आशीष

पन्तनगर के मज़दूर और प्रशासन में रस्साकशी तेज

यूनियनों द्वारा मिलकर संघर्ष का ऐलान

(बिगुल संवाददाता)

पन्तनगर, 17 अप्रैल। पन्तनगर मजदूरों के शहादत के पच्चीस वर्ष बाद अपने विभिन्न मांगों को लेकर मजदूर एक बार फिर संघर्ष की तैयारी में है। 'पन्तनगर कर्मचारी संगठन' ने विगत चार अप्रैल को 12 सूत्रीय

मांगपत्रक विश्वविद्यालय प्रशासन को सौंप दी है और समाधान न निकलने पर 21 अप्रैल से अनिश्चितकालीन हड़ताल की घोषणा कर दी है। जबकि मास्टररोल कर्मियों ने उच्च न्यायालय के आदेशानुसार नियमितीकरण न किए जाने के विरोध में उन्नीस अप्रैल से आन्दोलन शुरू करने की घोषणा की है। इसी क्रम में और यूनियनों ने भी आन्दोलन में उतरने की घोषणा की है।

पन्तनगर वि.वि. का प्रशासन भी मजदूर आन्दोलन को दबाने के लिए जुटा हुआ है। उसने एक निर्णय के तहत सभी शैक्षिक व गैर शैक्षिक अधिकारियों व कर्मचारियों को बगैर स्वीकृति के परिसर से बाहर जाने व अवकाश लेने पर प्रतिबन्ध लगा दिया है। प्रशासन ने राज्य सरकार से परिसर में किसी भी प्रकार के हड़ताल पर छह माह तक के रोक का आदेश भी प्राप्त कर लिया है। परिसर में धरना-प्रदर्शन-सभा पर रोक का स्थगनादेश जिला न्यायालय द्वारा पहले से ही जारी और लागू है।

कर्मचारी संगठन ने अपने मांग पत्रक में ठेकेदारी प्रथा समाप्त करने, खाली पदों पर नयी भर्तियां करने, वि.वि. फार्म के कृषि योग्य भूमि को ठेके पर न देने मास्टर लिस्टेड बचे हुए वेतन भोगी श्रमिकों व उच्च न्यायालय के आदेशानुसार 240 दिन का कार्य पूरा करने वाले श्रमिकों का नियमितीकरण करने, पूर्व समझौते के अनुसार फार्म मजदूरों के वेतन का भुगतान वि.वि. बजट से करने मजदूरों को आवास आदि की सुविधा देने सहित कई महत्वपूर्ण मांगें रखी हैं।

संगठन के मांग पत्रक के जवाब में वि.वि. प्रशासन ने जो पत्र संगठन को सौंपा है उसमें उसने शासन के हवाले से ठेकेदारी प्रथा के औचित्य को सही ठहराया है, नियमितीकरण, फार्म कर्मियों के वेतन आदि के मामले को राज्य सरकार के विचाराधीन बताकर उसे गोल करने की कोशिश की है और सभी मुद्दों को उसने टालने का प्रयास किया है। इससे यहां के मजदूरों में आक्रोश और भी बढ़ गया है।

उल्लेखनीय है कि इन तमाम मुद्दों पर वि.वि. प्रशासन पिछले दो-तीन वर्षों से यहां की यूनियनों को भरमाता रहा है। पिछले वर्ष भी यहां के मजदूरों ने हड़ताल की थी मगर आश्वासनों के आधार पर उनका आन्दोलन समाप्त हो गया था। इस बीच परिसर में ठेकेदारी प्रथा का जोर बढ़ता गया, प्रशासन ने 26 जून 2001 के उच्च न्यायालय द्वारा दिये गये नियमितीकरण के आदेश की भी अवहेलना कर दी।

इस बार विश्वविद्यालय प्रशासन हड़ताल के इस निर्णय को और ज्यादा गंभीरता से ले रहा है क्योंकि खण्ड-खण्ड में बंटी विभिन्न यूनियनों के नेतृत्व वाले मजदूर संघर्ष में एक साथ उतरने के लिए अपने नेताओं पर दबाव बनाते रहे हैं। यही कारण है कि पन्तनगर कर्मचारी संगठन, मजदूर संगठन-वर्कर्स यूनियन व श्रमिक कल्याण संघ ने संघर्ष का ऐलान किया है। मुद्दा काफी गरम है और मजदूर संघर्ष के लिए संकल्पबद्ध है। यदि पन्तनगर की यूनियनें मजदूर हित में एकजुट संघर्ष के लिए आगे आती हैं तो मजदूरों को उनका हक मिलेगा।

चार माह से जारी है शीलचन्द्र का मज़दूर आन्दोलन

दमन से मज़दूर और मजबूत हुए

रुद्रपुर, 5 अप्रैल (बिगुल संवाददाता)। शीलचन्द्र एग्रो-आयल्स लालपुर के मजदूर पिछले चार माह से संघर्ष की राह पर है। मालिक-प्रशासन गठजोड़ के खिलाफ यहां के मजदूरों ने शहीदे आजम भगत सिंह के शहादत दिवस 23 मार्च से ऊधम सिंह नगर के जिलाधिकारी कार्यालय पर बेमियादी भूख हड़ताल व धरना-प्रदर्शन शुरू कर दिया है। इस बीच जिलाधिकारी द्वारा आश्वासन व वार्ताओं की खानापूर्ति भी चलती रही। उधर नाजुक स्थिति में 12 अनशनकारी जिला अस्पताल में भर्ती करवा दिये गये थे, जिन्हें अनशन के 13वें दिन पुलिस फोर्स के साथ कोतवाल में बुला लिया। सीओ व कोतवाल के नेतृत्व में पुलिस ने निहत्थे प्रदर्शनकारियों पर लाठीचार्ज किया और उन्हें दौड़ा-दौड़ा कर पीटने लगी।

इस घटना में पांच-छह महिलाओं व सात आठ मजदूरों को चोटें आई।

- मज़दूर बेमियादी भूख हड़ताल पर
- प्रदर्शनकारी महिलाओं पर लाठीचार्ज
- संघर्ष एक नये मुकाम पर

काफी देर तक वहां अफरा-तफरी का माहौल बना रहा, लेकिन महिलाएं मुस्तैदी से डटी रहीं और अन्ततः जिलाधिकारी

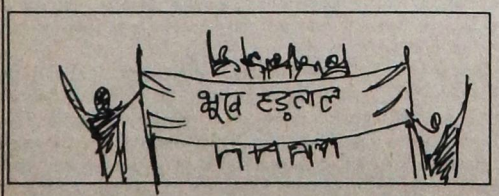

ने जबरिया जूस पिला दिया। इस घटना के विरोध में 5 अप्रैल से दो और मजदूर कश्मीर सिंह व मोहन सिंह रावत अनशन पर बैठ गये हैं।

अनशन के नौ दिन बीत जाने के बावजूद प्रशासन की तटस्थता के खिलाफ 31 मार्च को 'नारी सभा' के नेतृत्व में करीब 65-70 महिलाओं ने जिलाधिकारी का घेराव किया। महिलाएं डीएम से मिलना चाहती थीं। जिलाधिकारी कक्ष के बाहर हाल में महिलाएं एकत्रित थीं और नारे लगा रही थीं। देखते ही देखते पुलिस ने उन्हें चारो तरफ से घेर लिया। महिलाओं के उग्र तेवर को देखते हुए प्रशासन ने महिला व अन्य पुलिस फोर्स और ज्यादा मात्रा को महिलाओं के प्रतिनिधि मण्डल से बात करने के लिए बाध्य होना पड़ा।

इस घटना के बाद से जिला प्रशासन पर जो दबाव बना उसे वह चालाकी से फ्यूज करने की कोशिश में जुट गया। लेकिन चार माह के आन्दोलन के दौरान यहां के मजदूर इन स्थितियों को भांपने लगे थे, इसलिए वे थोड़ा संभलकर चल रहे हैं, यह अलग बात है कि उनके प्रतिनिधियों पर कई तरह के दबाव हैं। आन्दोलन लम्बा खिंच चुका है और 13-14 सौ रुपये मासिक वेतन पाने वाले मजदूरों की आर्थिक स्थिति एकदम से चरमरा गई है। लेकिन उनके संकल्प शक्ति में कोई कमी नहीं है। फर्जी मुकदमे, मालिक के गुण्डों की धमकियों, ट्रक से धरनास्थल को कुचलवाने की कोशिश, भयानक दंड व खरीद-फरोख्त की कोशिशों ने उन्हें और ज्यादा मजबूत बनाया है।

बहरहाल, डीएम ने फैक्ट्री मालिक के साथ मजदूरों की वार्ता करवाकर यह तय किया है कि सभी मजदूर विवाद समाप्ति का एक पत्र देंगे और प्रबन्धन सबको काम पर रख लेगा। लेकिन मालिक इस पर भी आनाकानी करता रहा और डीएम मामले को खींचता रहा। मजदूरों ने जब पुनः दबाव बनाया तो डीएम ने फैक्ट्री मालिक को बुलाकर दो दिन का समय दिया है। अब मजदूरों को इस पर भी भरोसा नहीं है, फिर भी वे धैर्य से वक्त की प्रतीक्षा करते हुए संघर्षरत है। दरअसल 11 दिसम्बर से लेकर अब तक यहां के मजदूरों ने जो कुछ भोगा व देखा है उससे सरकार, जिला प्रशासन, पुलिस, श्रम विभाग, न्यायपालिका-सबकी हकीकत उनके सामने आ चुकी हैं। कारखाने में सरकार द्वारा स्वीकृत न्यूनतम श्रम कानून लागू करने की बेहद सामान्य मांग पर भी शासन-प्रशासन के ये अंग जिस प्रकार से अपनी बेबसी दिखाते रहे, समय-समय पर मजदूरों का दमन करते रहे,और मालिकों के सामने दुम हिलाते रहे, उसने एक बार फिर यही प्रमाणित किया है कि यह पूरा तंत्र ही लुटेरे पूंजीपतियों की सेवा के लिए बना है।

निश्चित ही इसका मुकाबला मजदूरों के व्यापक एकताबद्ध संघर्ष द्वारा ही हो सकता है।

(पेज एक से आगे)

पन्तनगर गोलीकाण्ड

लिए पूरा विश्वविद्यालय परिसर पुलिस पी.ए.सी. छावनी में तब्दील हो चुका था। परिसर में धारा 144 और 'आवश्यक सेवा अधिनियम' लागू हो चुका था।

13 अप्रैल के उस काले दिन 6 हजार से ज्यादा मजदूरों ने शान्तिपूर्ण जुलूस निकाला। लेकिन जैसे ही मजदूरों का यह हुजूम चितरंजन भवन छात्रावास के निकट पहुँचा कि पहले से मोर्चा जमाये पी.ए.सी. के जवानों ने बगैर किसी चेतावनी के निहत्थे प्रदर्शनकारियों पर गोलियाँ चलानी शुरू कर दी। चारों तरफ से घेर कर गोलियों व संगीनों से मजदूरों की हत्या का यह ताण्डव तब तक चलता रहा जब तक छात्रावासों से निकलकर छात्रों ने पी.ए.सी. से मोर्चा नहीं संभाल लिया। विश्वविद्यालय के 'के' फार्म में खड़े गन्ने की खेत में न जाने कितनों को झोंककर खेत में आग लगा दी गई और फिर दो ट्रैक्टरों से यहाँ हैरों फेर कर सबूत तक नष्ट कर दिया गया। अधमरे-घायलों को इलाज के बहाने ट्रकों में लाद कर कहाँ ले जाया गया यह आज तक किसी को नहीं पता। लाशें तो बाद में दूर-दराज के इलाकों में मिलती रहीं। इस वहशियाना घटना के बाद लोगों का, विशेष रूप से छात्रों का जो गुस्सा फूटा, उससे हत्यारा कुलपति धर्मपाल सिंह परिसर छोड़ कर भाग गया, जो फिर कभी नहीं लौटा। और मजदूरों का संघर्ष जारी रहा।

सैकड़ों मज़दूरों की इस कुर्बानी के बाद पंतनगर के मज़दूरों की स्थिति बेहतर हुई। ठेकाकरण खत्म हुआ। लोगों का नियमितीकरण हुआ। बुनियादी सुविधाओं में इजाफा हुआ, सम्मानजनक वेतन मिलने की स्थिति बनी।

शहादत भरे इस ऐतिहासिक संघर्ष के 25 वर्ष बात आज स्थिति एक बार फिर अपने विपरीत में तब्दील हो गयी है। लोगों के रिटायर होने के बावजूद यहां सारी नियुक्तियां बन्द है। ठेका प्रथा जोर-शोर से जारी है। सुरक्षा विभाग में तो पहले से ठेका प्रथा लागू थी। अब तो ब्लाकों से लेकर लैब, विद्युत,कम्प्यूटर आदि सभी जगह यह लागू हो रहा है। धीरे-धीरे काम के घंटे बढ़ते जा रहे हैं औ दिहाड़ी कम होती जा रही है।

वैसे भी यहाँ किसी भी काम (तकनीकी/गैरतकनीकी) के लिए 58 रुपये की दिहाड़ी दैनिक वेतनभोगियों को 10-12 वर्षों से मिलती रही है। यह सरकार द्वारा स्वीकृत न्यूनतम वेतन से भी काफी कम

(पेज 7 पर जारी)

(पेज तीन से आगे)

पूंजी के खिलाफ श्रम का विद्रोह ...

तरीका हड़तालों का है। पहले जब एक देश में हड़ताल होती थी तो वहाँ मिल मालिक दूसरे देशों से मजदूर लाकर हड़ताल तुड़वा देता था। लेकिन अब इंटरनेशनल ने इसे करीब समाप्त कर दिया है। हमें होने वाली हड़ताल की सूचना मिलती है; हम उस सूचना को अपने सदस्यों में प्रसारित करते हैं और वे तुरंत समझ जाते हैं कि संघर्ष की जगह उनके लिए वर्जित भूमि है। इस तरह मालिकों को अपने मजदूरों से स्वयं ही निपटना पड़ता है। अधिकांश मामलों में मजदूरों को इससे अधिक मदद की जरूरत नहीं होती। उनको आपसी चंदे और अपने ही संगठनों से धन की मदद मिल जाती है। लेकिन अगर उनकी कठिनाइयाँ अधिक बढ़ जाती हैं, और उस हड़ताल को हमारे संगठन का सहयोग मिला हो तो हम भी उनकी आर्थिक मदद करते है। इसी ढंग से कुछ दिन पहले बार्सिलोना के सिगरेट बनानेवालों की हड़ताल सफल हुई। यद्यपि यह संगठन कुछ विशेष स्थितियों में हड़तालों का समर्थन करता है, हड़तालों में इसकी कोई विशेष रुचि नहीं है। इस संगठन को हड़तालों से कोई आर्थिक लाभ नहीं हो सकता, बल्कि हानि की ही संभावना रहती है। सारांश यह है कि मजदूर वर्ग समाज में धन की वृद्धि के बावजूद गरीब है, और आराम की वस्तुओं की बाढ़ के बावजूद दयनीय दशा में पड़ा हुआ है। अपनी आर्थिक-भौतिक दरिद्रता के कारण मजदूर वर्ग नैतिक और शारीरिक दृष्टि से बौना होता जा रहा है। यह वर्ग अपनी समस्याओं के हल के लिए दूसरों पर निर्भर नहीं हो सकता। अब उनके लिए यह एकदम जरूरी हो गया है कि वे अपनी समस्याओं का हल स्वयं करें। अब उन्हें अपने तथा पूँजीपतियों और जमींदारों के आपसी संबंधों को बदलना है, जिसका अर्थ यह है कि उन्हें समाज को ही बदलना है। यही हर प्रकार के मजदूर संगठन का मुख्य उद्देश्य है–खेतिहर तथा कल-कारखानों के मजदूरों के संघ, सहकारी समितियाँ, सहकारी भंडार तथा सहकारी उत्पादन आदि तो उस मुख्य लक्ष्य के साधन मात्र हैं। इन संगठनों में पूर्ण आपसी एकता स्थापित करना ही इंटरनेशनल का काम है।

इसका प्रभाव अब हर जगह महसूस किया जा रहा है। स्पेन में दो अखबार इसके विचारों का प्रचार करते हैं। तीन जर्मनी में, तीन ही आस्ट्रिया व हालैंड में, छह बेल्जियम व उतने ही स्विट्जरलैंड में इसके विचारों को प्रसारित कर रहे हैं। और अब जबकि मैंने यह बता दिया कि इंटरनेशनल क्या है, आप इस स्थिति में हो गए हैं कि इंटरनेशनल के बारे में, प्रचारित षड्यंत्रों की कहानियों के बारे में आप स्वयं अपनी राय बना लें।

लैंडर: *मैं आपकी बात ठीक-ठीक समझ न सका।*

मार्क्स: क्या आप यह नहीं देख रहे हैं कि पुराना समाज इस संगठन का मुकाबला बहस और संगठन के तरीकों से न कर पाने के कारण इस पर षडयंत्र करने के आरोप लगाने की जालसाजी करने को मजबूर हो रहा है?

लैंडर: *लेकिन फ्रांस की पुलिस का कहना है कि पहले की घटनाओं को छोड़ भी दिया जाय तो भी हाल की घटनाओं में इंटरनेशनल की साजिश साबित करने के लिए उनके पास काफी सबूत हैं।*

मार्क्स: अगर आप चाहें तो हम उन पहले की घटनाओं के बारे में कुछ कहना चाहेंगे; क्योंकि साजिश करने के जो आरोप इंटरनेशनल के खिलाफ लगाए गए हैं उनकी सचाई का पता इससे लग सकता है। आप उस पहली साजिश को याद कीजिए। हुआ यह कि मतदान से आत्मनिर्णय की घोषणा हो चुकी थी[6]। अधिकांश मतदाता विचलित हो रहे थे। पुराने शाही शासन के लिए उनके मन में कोई उत्साह नहीं था और जिस नए समाज से जनता को बचाने का दावा किया जा रहा था उस समाज के तथाकथित खतरों का वे विश्वास नहीं करते थे। ऐसी स्थिति में एक नया हौवा खड़ा करना ज़रूरी था। पुलिस ने एक हौवा खोज निकालने की कोशिश की। चूँकि वे हर मजदूर संगठन से नफरत करते हैं, उनकी बुरी नजर इंटरनेशनल पर पड़ी। इस सुखद खयाल से वे उत्तेजित हो उठे। उनका ख्याल था कि अगर वे नए हौवा के रूप में इंटरनेशनल को सामने लाने में कामयाब हुए तो एक ही साथ इंटरनेशनल बदनाम भी हो जाएगा और शाही उद्देश्यों की पूर्ति के लिए उन्हें राजकीय कृपा भी मिल जाएगी। इस सुखद ख्याल से ही सम्राट की हत्या की हास्यास्पद साजिश की पैदाइश हुई - जैसे कि हम उस गए-गुजरे बूढ़े व्यक्ति की हत्या करना चाहते हों! उन्होंने इंटरनेशनल के नेताओं को कैद कर लिया। उनके खिलाफ तरह-तरह के सबूत गढ़े गए। अधिकारियों ने तैयारी की, लेकिन इसी बीच में आत्मनिर्णय के लिए मतदान हुआ[7]। वह गढ़ी हुई कॉमेडी एक भोंड़ा प्रहसन बन कर रह गई। उस घटिया को देखने वाले विवेकशील यूरोप को एक क्षण के लिए भी इसके वास्तविक स्वरूप के बारे में धोखा नहीं हुआ।

केवल फ्रांसीसी ग्रामीण जनता को ही बेवकूफ बनाया जा सका। आपके अंग्रेजी अखबारों ने इस घटना की शुरू की खबरें छापीं, लेकिन वे अंत को याद करना भूल गए। फ्रांसीसी जज ने इज्जत बचाने की खातिर साजिश के अस्तित्व को तो स्वीकार किया, लेकिन वह भी यह घोषणा करने के लिए मजबूर हुआ कि इसमें इंटरनेशनल का कोई हाथ नहीं है। मेरी बात का विश्वास कीजिए, यह दूसरा तथाकथित षड्यंत्र भी पहले जैसा ही है। फ्रांसीसी अधिकारी फिर पहले की तरह ही सक्रिय हो रहे हैं। दुनिया के अब तक के सबसे महान जन आंदोलन का लेखा-जोखा लेने के लिए अधिकारियों की पुकार हुई है। उनको जमाने के सैकड़ों संकेतों से सबक सीखना चाहिए और यह समझने की कोशिश करनी चाहिए कि यह जन-आंदोलन मजदूरों की चेतना के विकास और शासक वर्ग की अक्षमता और आराम की भावना की वृद्धि का परिणाम हैं। इतिहास की प्रगति अब उस अंतिम दौर में पहुँच रही है जब शासन एक शोषक वर्ग के हाथों से निकल कर जनता के हाथों में आ जाएगा। अब यह महान मुक्ति आंदोलन समय, स्थान और परिस्थितियों का न्यायोचित परिणाम हैं इतिहास की इस प्रक्रिया को समझने के लिए एक विचारक की बुद्धि चाहिए, जबकि अधिकारियों के पास केवल जासूसी की समझ है। अपनी समझ और चेतना के अनुसार अधिकारियों ने इस महान घटना की एक जासूस जैसी व्याख्या करके इसे केवल एक षडयंत्र कह कर छुट्टी पा ली है।

लैंडर: जब फ्रांस का हर अखबार इस प्रकार की खबरें प्रसारित कर रहा है तो यूरोप के लाग और सोच भी क्या सकते हैं?

मार्क्स: हां, साहब! हर फ्रांसीसी अखबार की यही हालत है। देखिए, उनमें से एक यहाँ पड़ा है (ल सिचुएश को हाथ में लेकर) और तथ्यों की दृष्टि से इसकी सचाई पर आप स्वयं विचार कीजिए। (मार्क्स अखबार में छपी एक खबर पढ़ते हैं) "डा. कार्ल मार्क्स (इंटरनेशनल वाले) फ्रांस की ओर भागते समय बेल्जियम में गिरफ्तार। लंदन की पुलिस बहुत दिनों से उस संस्था पर कड़ी नजर रखे हुए है जिससे मार्क्स जुड़े हुए हैं, और उस संस्था के दमन के लिए कड़े कदम उठा रही है।" दो वाक्य और दो झूठ! आप देखिए कि आपकी आंखें धोखा तो नहीं दे रही हैं। आप देख रहे हैं कि मैं बेल्जियम की जेल में न होकर यहाँ लंदन में बड़े आराम से आपके सामने बैठा हूँ। आप यह भी जानते होंगे कि यहाँ लंदन की पुलिस इंटरनेशनल के किसी मामले में वैसे ही कोई दखल नहीं देती है। जैसे हम उसके किसी मामले में दखलंदाजी नहीं करते। फिर भी ऐसी ही खबरें यूरोप भर के अखबारों में हर रोज छपती रहती हैं; इन झूठी खबरों का कोई खंडन नहीं करता।

लैंडर: *क्या आपने इन झूठी खबरों के खंडन का प्रयास किया है?*

मार्क्स: मैंने तब तक ऐसे प्रयास किए जब तक ऐसा करते-करते मैं थक नहीं गया। इंटरनेशनल के बारे में किस तरह लापरवाही से खबरें गढ़ी जाती हैं उसका एक और प्रमाण लीजिए। एक अखबार में छपा था कि फैलिक्स प्यात (Felix Pyat) इंटरनेशनल का सदस्य है।

लैंडर: *क्या वह सदस्य नहीं है?*

मार्क्स: ऐसे निरंकुश व्यक्ति के लिए इस संगठन में कोई जगह नहीं है। एक बार उसने जबर्दस्ती एक मूर्खतापूर्ण घोषणा हमारे नाम से कर दी तो तुरन्त उसका खंडन किया गया। लेकिन साहब, अखबार वालों ने उस खंडन को छापा ही नहीं।

लैंडर: *क्या मैज़िनी (Mazzini) आपके संगठन का सदस्य है?*

मार्क्स: (हँसते हुए) नहीं, नहीं। अगर हम लोग उसके विचारों के दायरे के बाहर नहीं गए होते तो हमारी शायद ही कोई प्रगति हुई होती।

लैंडस: मुझे यह सुनकर बहुत आश्चर्य हो रहा है। मैं तो समझता था कि वह बहुत उग्रवादी विचारों का प्रतिनिधि व्यक्ति है।

मार्क्स: वह मध्य वर्ग के गणतंत्र की पुरानी धारणा का ही प्रतिनिधित्व करता हैं। हम मध्य वर्ग से कोई मेल मिलाप नहीं करना चाहते हैं अब वह आधुनिक आंदोलनों से उसी तरह पिछड़ गया है जैसे जर्मन के वे अध्यापक, जो अब भी यूरोप में भावी सांस्कृतिक लोकतंत्रवाद के मसीहा माने जाते हैं। सन् 1848 में यह एक सचाई थी, जब जर्मनी का मध्य वर्ग (इंग्लैंड में प्रचलित अर्थ में) पूरी तरह विकसित नहीं हुआ था। लेकिन अब वे जर्मन अध्यापक पूरी तरह प्रतिक्रियावादियों के साथ हैं और सर्वहारा वर्ग उन्हें पूरी तरह भूल चुका है।

लैंडर: *कुछ लोगों का खयाल है कि आपके संगठन में विधेयवादी लोगों का भी प्रभाव है।*

मार्क्स: ऐसी कोई बात नहीं है। हमारे संगठन में विधेयवादी विचारों के व्यक्ति भी हैं और दूसरे तरह के व्यक्ति भी हैं जो हमारे साथ काम करते हैं। वे हमारे साथ अपने दर्शन के कारण नहीं हैं। हम उस दर्शन को जनता की लोकप्रिय सरकार के लिए बेकार समझते हैं। यह दर्शन पुरानी वर्ग व्यवस्था के स्थान पर एक नया श्रेणीबद्ध समाज ही बनाना चाहता है।

लैंडर: *मुझे लगता है कि आपके नए अंतर्राष्ट्रीय आंदोलन को एक नए दर्शन और नए संगठन का निर्माण करना होगा।*

मार्क्स: आपने ठीक समझा है। यह सच है। उदाहरण के लिए अगर हम पूँजी के खिलाफ इस लड़ाई में संघर्ष और तरीके मिल के राजनीतिक अर्थशास्त्र से लें तो हमारी प्रगति की कोई संभावना नहीं होगी। मिल ने श्रम और पूँजी संबंधों को जो रूप बताया है, हम उससे भिन्न दूसरी तरह के संबंध स्थापित करने के लिए प्रत्यत्नशील हैं।

लैंडर: *धर्म के बारे में आपकी क्या राय है?*

मार्क्स: इस संबंध में संगठन की ओर से कुछ कहना नहीं चाहता। जहाँ तक मेरा सवाल है, मैं नास्तिक हूँ। इंग्लैंड में इस तरह की प्रतिज्ञा सुनकर लोगों को आश्चर्य हो सकता है, लेकिन यह सुखद बात है कि जर्मनी या फ्रांस में धर्म के खिलाफ ऐसी बातों को धीरे से कहने की जरूरत नहीं है।

लैंडर: *और इसके बावजूद आपने अपनी गतिविधि का केन्द्र इस देश में ही स्थापित किया है।*

मार्क्स: ऐसा करने के कुछ स्पष्ट कारण हैं। एक तो यही कि संगठन बनाने के अधिकार की स्वतंत्रता यहाँ एक स्थापित चीज है। जर्मनी में भी ऐसा अधिकार है, लेकिन वहाँ इसमें बहुत सारी कठिनाइयाँ हैं। फ्रांस में तो बहुत दिनों से ऐसा अधिकार है ही नहीं।

लैंडर: *और संयुक्त राज्य अमेरिका के बारे में आपकी क्या राय हैं?*

मार्क्स: यूरोप का पुराना समाज ही अभी तक हमारी गतिविधि का केन्द्र बना हुआ है। कई कारणों से अमेरिका में श्रम समस्या को व्यापक महत्व नहीं मिला है। लेकिन मजदूर आंदोलनों के विकास में बाधक परिस्थितियाँ धीरे-धीरे समाप्त हो रही हैं और मजदूर आंदोलन बढ़ रहे हैं। यूरोप की भाँति अमेरिका में भी मजदूर वर्ग के स्वतंत्र विकास, समाज के दूसरे वर्गों से उसके अलगाव और पूँजी से उनके संबंध विच्छेद के साथ-साथ श्रम समस्या का रूप व्यापक होता जा रहा है।

लैंडर: *ऐसा लगता है कि इस देश में श्रम समस्या का समाधान, उसका रूप जैसा भी हो, क्रांति के हिंसात्मक साधनों के बिना प्रयोग के भी हो सकता हैं जब तक अल्पमत बहुमत में न बदल जाय तब तक सभाओं, संगठनों और प्रेस के माध्यम से आंदोलन चलाने की ब्रिटिश पद्धति के कारण ऐसी आशा की जा सकती है।*

मार्क्स: मैं इस संबंध में आपकी तरह आशावादी नहीं हूँ। इंग्लैंड में मध्य वर्ग को जब तक मतदान की शक्ति का एकाधिकार प्राप्त है तब तक वह बहुमत के निर्णय को हमेशा मानने के लिए तैयार है। आप मेरी बात पर गौर कीजिए - जब वह अपने अस्तित्व के निर्णायक सवालों पर मतदान में पराजित होगा तब यहां इंग्लैंड में भी एक नए किस्म की दास प्रथा कायम करने वाली लड़ाई शुरू हो जाएगी।

[इस विलक्षण व्यक्ति से हुई अपनी अंतरंग वार्ता के मुख्य मुद्दों का सारांश अपनी याद्दाश्त के मुताबिक मैं आपको भेज रहा हूँ। आप इसके आधार पर अपनी राय बना सकते हैं। कम्यून की घटना में इसकी साजिश के पक्ष-विपक्ष में जो भी कहा जाय, हमें यह निश्चित रूप से स्वीकार करना चाहिए कि इस अंतर्राष्ट्रीय संगठन के रूप में सभ्य दुनिया में एक ऐसी नई शक्ति का उदय हुआ है जिसका अच्छा या बुरा प्रभाव शीघ्र ही सारी दुनिया में महसूस किया जाएगा।]

-आर. लैंडर

(न्यूयार्क वर्ल्ड, 18 जुलाई, 1871)

संदर्भ

1. नवंबर 1605 में सम्राट, लॉर्ड्स और संसद को नष्ट करने के लिए प्रसिद्ध बारूद षडयंत्र हुआ था। वह कैथोलिकों के खिलाफ दंड विधि के बदले में हुआ था। 5 नवंबर 1605 को संसद भवन के नीचे रखे बारूद में आग लगाने की कोशिश करते समय गाई फॉक्स (ळनल थूमे) पकड़ा गया था।

2. मार्क्स को 1841 में जेन विश्वविद्यालय से डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी की उपाधि मिली।

3. यह दूसरा व्यक्ति संभवतः फ्रेडरिक ऐंगेल्स ही थे, जो उस समय लंदन में थे और मार्क्स के गहरे मित्र होने के कारण अक्सर मार्क्स के घर जाया करते थे। ऐंगेल्स को अंग्रेजी की बहुत अच्छी जानकारी थी।

4. अंतर्राष्ट्रीय मजदूर संघ की परिषद जिसकी हर सप्ताह लंदन में बैठक होती थी।

5. 18 मार्च, 1871 को फ्रांस के मजदूरों ने पेरिस पर कब्जा करके पेरिस कम्यून की स्थापना की थी। इस पेरिस कम्यून की पराजय 28 मई, 1871 को हुई। पेरिस विद्रोह से संवाददाता का आशय पेरिस कम्यून से ही है।

6. 7 मई, 1870 को नेपोलियन तृतीय ने सरकार द्वारा प्रस्तावित संशोधनों और जन समर्थन के लिए आत्मनिर्णय का मतदान करवाया। इंटरनेशनलवादियों ने मतदान के बहिष्कार की वकालत की।

7. मतदान के एक दिन पहले पुल्सि ने इंटरनेशनल के नेताओं की धर-पकड़ का तीन बार अभियान चलाया। मुकदमा जून-जुलाई 1870 में चला। अनेक नेताओं को कैद की सजा मिली।

राहुल जन्म तिथि (9 अप्रैल) व पुण्यतिथि (14 अप्रैल) के अवसर पर

साम्यवादियों को जनता के सामने निधड़क होकर अपने विचार को रखना चाहिए और उसी के अनुसार करना भी चाहिए। हो सकता है, कुछ समय तक लोग आपके भाव न समझ सकें और गलतफहमी हो, लेकिन अन्त में आपका असली उद्देश्य हिन्दू-मुसलमान सभी गरीबों को आपके साथ सम्बद्ध कर देगा। रूढ़ियों को लोग इसलिए मानते हैं, क्योंकि उनके सामने रूढ़ियों को तोड़ने वालों का उदाहरण पर्याप्त मात्र में नहीं है। लोगों में इस खयाल का जोर से प्रचार करना चाहिए कि मजहब और खुदा गरीबों के सबसे बड़े दुश्मन हैं। वे मरने के बाद स्वर्ग का लालच देकर इस जीवन को नरक बनाते हैं। ऋतु सम्बन्धी तथा अन्य राष्ट्रीय महत्व के उत्सवों में साम्यवादियों को भी शामिल होना चाहिए, लोगों को भी उसकी ओर आकर्षित करना चाहिए, लेकिन जिन त्योहारों का सम्बद्ध मजहब से है, उनसे अपने को अलग रखना चाहिए।

● राहुल सांकृत्यायन

साम्यवादी समाज का आर्थिक निर्माण नयी तरह से करना चाहते हैं और वह निर्माण रफू या लीपापोती करके नहीं करना होगा। एक तरह से उसे नयी नींव पर दीवार खड़ी करके करना होगा। भारत की साधारण जनता की गरीबी इतनी बढ़ी हुई है कि उसके लिए अनन्त की ओर इशारा नहीं किया जा सकता। हमें अपने काम में तुरन्त जुट जाना चाहिए।

● राहुल सांकृत्यायन

खेतिहर मजदूरों को खयाल करना चाहिए कि उनकी आर्थिक मुक्ति साम्यवाद ही से हो सकती है और जो क्रान्ति आज शुरू हुई है, वह साम्यवाद पर ही ले जाकर रहेगी। उसके सिवा भले दिनों को दिखलाने वाला दूसरा कोई रास्ता नहीं है।

● राहुल सांकृत्यायन

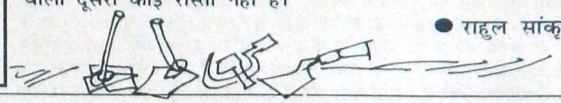

(पेज एक से आगे)

इराक में एक सोये हुए शेर को छेड़ने का...

हश्र हुआ था। हमलावर प्राय: विजित देश की जनता से उसका इतिहास "छीन" लेने की कोशिश करते हैं ताकि वे उसे "इतिहास विहीन" सिद्ध कर सकें और उसे इतिहास को देखने का अपना नजरिया देकर दिमागी गुलामी का शिकार बना सकें। जनता के इतिहास को नष्ट करके भविष्य-निर्माण की उसकी शक्ति नष्ट करने की कोशिशें पहले भी हुई हैं, लेकिन ये कोशिशें कभी भी अपने मकसद में पूरी तरह कामयाब नहीं हुई हैं और इस बार भी नहीं होंगी। बहरहाल, अमेरिका ने अपनी इस घिनौनी हरकत से एक बार फिर यही सिद्ध किया है कि पूँजीवाद अपनी प्रकृति से ही संस्कृतिद्रोही होता है और समृद्धि के शिखर पर बैठे उद्धत-उन्मादी साम्राज्यवादी धनपशु अब समूची मानव-सभ्यता के शत्रु बन चुके हैं।

●

तेल के कुँओं पर कब्जे के बाद अब अमेरिका संयुक्त राष्ट्रसंघ से इराक की आर्थिक नाकेबन्दी खतम करने के लिए कह रहा है। मकसद एकदम साफ है। इराकी तेल बेचकर, और ज्यादा से ज्यादा मात्रा में खुद हड़पकर अपना रिजर्व स्टॉक बढ़ाकर अमेरिकी थैलीशाह जल्दी से जल्दी मालामाल हो जाने को आतुर हैं। उधर तथाकथित पुनर्निर्माण के नाम पर अमेरिकी कम्पनियों में ठेके की होड़ मची हुई है। युद्ध के असली उद्देश्य साफ हो चुके हैं। अमेरिकी बर्बरों का असली चेहरा एकदम सामने है।

इराक पर कब्जे ने अमेरिकी साम्राज्यवादी लुटेरों की हवस को शान्त करने के बजाय और बढ़ा दिया है। इराक को मदद करने और सद्दाम हुसैन तथा उनके सहयोगियों को शरण देने का आरोप लगाते हुए अब वे अगला निशाना सीरिया पर साध रहे हैं। अब सीरिया को आतंकवाद का एक केन्द्र बताया जा रहा है। ईरान और उत्तर कोरिया को "शैतान की धुरी" का हिस्सा बताते हुए पहले से ही वे धमकियाँ देते रहे हैं। आने वाले दिनों की तस्वीर साफ होती जा रही है। अपने अन्दरूनी आर्थिक संकटों से–मन्दी और अतिउत्पादन के संकट से निजात पाने के लिए अमेरिकी साम्राज्यवाद न सिर्फ अरब जगत पर बल्कि पूरी दुनिया के बाजार पर अपने प्रभुत्व को एकछत्र बनाने के लिए कुछ भी कर गुजरने पर आमादा है। लेकिन यह भी निश्चित है कि जनता भी अब रुकने वाली नहीं है। पूरी दुनिया में अमेरिका-विरोधी जनाक्रोश का लावा सड़कों पर बह रहा है। पूरे अरब जगत में जनसंघर्षों के नये विस्फोट के आसार एकदम स्पष्ट हैं। इससे अरब देशों के प्रतिक्रियावादी शासक बुरी तरह से डरे हुए हैं और अमेरिका से आग्रह कर रहे हैं कि वह अपनी सेनाएँ इराक से जल्दी से जल्दी हटा ले, इराक में पुनर्निर्माण की जिम्मेदारी संयुक्त राष्ट्रसंघ को सौंप दे तथा नयी सरकार बनाने का काम स्वयं इराकी जनता को ही करने दे। अरब देशों के शेखों-शाहों और अन्य बुर्जुआ हुकूमतों को यह भय लगातार सता रहा है कि आने वाले दिनों में मध्य पूर्व के सभी देशों की सड़कों पर जन संघर्षों का जो सैलाब उमड़ेगा वह उनकी सत्ताओं को पत्तों के समान बहा ले जायेगा। इराकी जनता के साथ एकजुटता जाहिर करते हुए जो उग्र प्रदर्शन गत कुछ महीनों से लगातार सभी अरब देशों में हो रहे हैं, उनमें अरब सत्ताधारी अपने भविष्य के अशनि- संकेत एकदम साफ देख रहे हैं। उन्हें यह लगने लगा है कि जो इन्तिफादा अभी तक फिलिस्तीन की विशेषता बना हुआ था, वह अब समूचे मध्य पूर्व की राजनीतिक परिघटना के रूप में सामने आने वाला है। अरब जनता आज 'सर्व अरब राष्ट्रवाद' (पैन-अरब नेशनलिज्म) की सीमाओं को भलीभाँति समझने लगी है। साथ ही उसके सामने धार्मिक जमीन पर खड़े होकर किये जाने वाले प्रतिरोध की सीमाएँ भी स्पष्ट होती जा रही हैं। इस आधार पर आज वहाँ साम्राज्यवाद पूँजीवाद विरोधी संघर्ष की एक नई जमीन तैयार हो रही है। यह समूची अरब जनता की एकजुटता की एक नई जमीन है। इस नये माहौल में, आने वाले दिनों में फिलिस्तीनी जनता का मुक्ति संघर्ष भी एक नया संवेग ग्रहण कर आगे की ओर गतिमान होगा। इक्कीसवीं सदी में विश्व-पूंजीवाद के विरुद्ध जनसंघर्षों के तूफान सबसे पहले मध्य पूर्व में भड़केंगे और फिर लातिन अमेरिका, एशिया और अफ्रीका के देश भी इस दावाग्नि की चपेट में आ जायेंगे, इस पूर्वानुमान के पर्याप्त आधार आज मौजूद हैं।

●

इराक के बाद की स्थितियों ने एक बार फिर साबित कर दिया है कि साम्राज्यवादी दुनिया कभी भी एकध्रुवीय नहीं हो सकती। साम्राज्यवादी लुटेरों के बीच होड़ और झगड़े लगातार बने रहेंगे और विश्व बाजार के बँटवारे के लिए उनके बीच युद्ध की सम्भावनाएँ भी किसी न किसी रूप में लगातार बनी रहेंगी। इराक में अमेरिकी हस्तक्षेप का विरोध फ्रांस, जर्मनी और रूस अपनी जनतांत्रिक प्रतिबद्धता के चलते नहीं कर रहे थे। उनके विरोध का मुख्य कारक साम्राज्यवादियों के अपने आर्थिक हितों का टकराव था आज सामराजी वित्तीय पूंजी के विविध ब्लाकों के बीच जो शक्ति-सन्तुलन मौजूद है, उसके हिसाब से फ्रांस और जर्मनी सीमित विरोध प्रदर्शित करके चुप रह गये। लेकिन आगे हमेशा ऐसा नहीं होगा। आने वाले दिनों में, यूरो की ताकत निश्चय ही संकटग्रस्त डॉलर को प्रभावी चुनौती देगी और इसका प्रभाव राजनीतिक पटल पर भी दीखेगा। पेट्रो-यूरो के उभरने और उसके हाथों भविष्य में पेट्रो-डालर के मानमर्दन की आशंका भी अमेरिका के इराक युद्ध के पीछे एक अहम कारण रहा है। एक नये प्रकार के साम्राज्यवादी ध्रुवीकरण की तस्वीर धीरे-धीरे साफ होती जा रही है जिसमें एक ओर अमेरिका–ब्रिटेन–जापान की धुरी बन रही है तो दूसरी ओर जर्मनी-फ्रांस-रूस की। नवोदित पूँजीवादी चीन स्वयं को दूसरी धुरी से जोड़ रहा है। इन दोनों धुरियों के देशों के बीच आपसी अन्तरविरोध भी हैं जैसा कि इराक में संयुक्त राष्ट्रसंघ की भूमिका तथा सीरिया को अमेरिकी धमकी के मामले में ब्रिटेन के अमेरिका के प्रतिकूल स्टैण्ड से जाहिर हो चुका है। यूरोप के जो अन्य पूँजीवादी देश तथा कनाडा और आस्ट्रेलिया आज अमेरिका के साथ खड़े हैं, उनमें से कई एक, यूरो की ताकत बढ़ने और विश्व शक्ति सन्तुलन बदलने के साथ ही, पाला पलट करके दूसरी धुरी के साथ आ जुड़ेंगे।

आने वाले दिनों में विश्व बाजार में लूट के लिए पगलाये साम्राज्यवादियों की आपसी होड़ विभिन्न क्षेत्रीय युद्धों, या यहाँ तक कि एक नये विश्व युद्ध के रूप में भी सामने आ सकती है। हालाँकि आज के विश्व-परिवेश में बड़े क्षेत्रीय युद्धों की ही सम्भावना अधिक है, फिर भी विश्वयुद्ध की सम्भावना से भी पूरी तरह से इनकार नहीं किया जा सकता। कुछ शान्तिवादी किस्म के प्राणी विश्वयुद्धों में नाभिकीय अस्त्रों के इस्तेमाल का भय दिखाकर जनता में भय और पराजयवाद की भावना भरने का काम करते हैं।

यह एकदम गलत है। अव्वलन तो नाभिकीय अस्त्रों पर किसी एक साम्राज्यवादी देश की इजारेदारी नहीं होने के कारण इनके प्रयोग की सम्भावना कम है। दूसरे, साम्राज्यवादी इस पूरी पृथ्वी को तबाह करने के लिए नहीं, बल्कि बाजार पर कब्जे के लिए युद्ध लड़ते हैं, अत: नाभिकीय युद्ध शुरू करने के पहले वे हजार बार सोचेंगे। तीसरे, सबसे बड़ी अवरोधक जनता है। पश्चिमी देशों में भी साम्राज्यवादी वहाँ का शासक वर्ग है, न कि पूरी जनता। यूरोप-अमेरिका में भी इराक-युद्ध विरोध ी विशाल जन-प्रदर्शनों ने साफ कर दिया है कि वहाँ की बहुसंख्यक आबादी साम्राज्यवादी हमलों और युद्धों के खिलाफ है। आज जो भी साम्राज्यवादी सत्ता एक नया हिरोशिमा या नागासाकी बनाने की कोशिश करेगी, वह अपने देश की जनता के विद्रोह की ही ज्वाला में जलकर राख हो जायेगी। ऐसी कोई भी सम्भावित विनाश-लीला विश्व क्रान्ति की गति को कई गुना अधिक बढ़ा देगी। साम्राज्यवाद पूरी दुनिया की जनता का विनाश नहीं कर सकता। बल्कि जनता के हाथों उसका विनाश अवश्यंभावी है। यही इतिहास की स्वाभाविक गति है। साम्राज्यवाद फौरी तौर पर चाहे जितना शक्तिशाली हो, रणनीतिक तौर पर यह आज भी कागजी बाघ है और पहले हमेशा से अधिक कागजी है। इतिहास का यह सत्यापित सूत्र अभी भी अलंघ्य है कि या तो युद्ध क्रान्तियों को जन्म देंगे या फिर क्रान्तियां युद्ध को रोकेंगी। आने वाले समय में शायद हम एक साथ इन दोनों ही प्रक्रियाओं के साक्षी बनें।

●

इराक में जल्दी ही अमेरिकी हमलावरों को दो स्तरों पर विकट जन-प्रतिरोध का सामना करना पड़ेगा। पहला, पूरे देश में बिखरे हुए छापामार संघर्ष के रूप में और दूसरा, फिलिस्तीनी इंतिफादा जैसे व्यापक जन-प्रतिरोध के रूप में। गौर करें तो इन दोनों ही रूपों में संघर्ष की शुरुआत हो भी चुकी है। इराक के सभी प्रमुख शहरों में जनता के बड़े-बड़े प्रदर्शन हो रहे हैं जिनमें 'अमेरिकियों, इराक से भाग जाओ, नहीं तो हम तुम्हें समुद्र में डुबो देंगे, रेत में दबा देंगे, जैसे नारे अमेरिकी सैनिक दस्तों के सामने खड़े होकर लगाये जा रहे हैं। दूसरी ओर, सुदूर क्षेत्रों पर अमेरिकी कब्जा अभी भी दूर की कौड़ी बना हुआ है और शहरों में भी छिटपुट प्रतिरोध जारी है। छापामारों के हमलों और आपूर्ति लाइन काटते रहने के खतरों से अमेरिकी सैनिक अभी से भयभीत हैं।

जनता के छापामार युद्ध की शुरुआत तो अब होगी। यह भूलना नहीं चाहिए कि सद्दाम हुसैन की सत्ता जनता की सत्ता नहीं, बल्कि एक निरंकुश बुर्जुआ सत्ता थी। खाड़ी युद्ध के दौरान, ईरान के विरुद्ध सद्दाम ने अमेरिकी मोहरे की भूमिका निभाई थी, हालाँकि इसके भी मूल में उनकी अपनी क्षेत्रीय विस्तारवादी महत्वाकांक्षाएँ ही थीं। जब ये महत्वाकांक्षाएँ अमेरिकी हितों के प्रतिकूल हो गयीं, तो फिर सद्दाम अमेरिका की आँख की किरकिरी बन गये और इराकी तेल पर कब्जे के लिए तथा अरब धरती पर प्रत्यक्ष हस्तक्षेप के लिए अमेरिका को उचित बहाना मिल गया।

जाहिर है कि इतिहास की लहर पर सवार सद्दाम एक दौर विशेष में जनता के नायक बन गये, जो कि वास्तव में वे थे नहीं। वैसे भी, एक दौर में साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष में सकारात्मक भूमिका निभाने के बाद बाथ पार्टी के समाजवाद और अरब राष्ट्रवाद की भूमिका अब इराक में (और सीरिया में भी) समाप्त हो चुकी थी। अपने देश की जनता के लिए सद्दाम एक निरंकुश बुर्जुआ शासक ही थे, लेकिन अमेरिकी गुण्डागर्दी ने उन्हें कुछ समय के लिए जनता का नायक बना दिया था। अमेरिका के हाथों उनकी राज्यसत्ता की संगठित सेना की पराजय तो होनी ही थी, लेकिन इराक की जनता की पराजय उतनी ही असम्भव है। जैसे अमेरिका लाख कोशिशों के बावजूद, अपने पिछवाड़े लातिन अमेरिकी जनता के प्रतिरोध–संघर्षों को दबा नहीं पाया है, जैसे उसे कोरिया, वियतनाम और कम्पूचिया से दुम दबाकर भागना पड़ा था, उसी तरह इराक में भी व्यापक जन प्रतिरोध उसे छठी का दूध याद दिला देगा। और जब यह आग पूरे अरब जगत में फैल जायेगी, फिर तो सब कुछ उसके बस के बाहर हो जायेगा।

शताब्दियों का यह इतिहास रहा है कि उपनिवेशवादी हमलावरों के सामने जुझारू अरब जनता ने कभी भी घुटने नहीं टेके। आधी सदी से भी अधिक पुराना फिलिस्तीनी मुक्ति संघर्ष भी इसी तथ्य की गवाही देता है।

अफगानिस्तान का भी यही इतिहास रहा है और आज भी वह इतिहास दुहराया जा रहा है कट्टरपंथी, अलोकप्रिय तालिबान की निरंकुश सत्ता को उखाड़ फेंकना आसान था, लेकिन कठपुतली करजई सरकार आज भी वहाँ काबुल की चौहद्दी तक ही सीमित है। वहां भी अमेरिकी साम्राज्यवादी लुटेरों का वही हश्र होगा जो रूसी साम्राज्यवादियों का हुआ था। और फिर अरब जगत की धरती तो कई गुना अधिक अग्निमय है। अमेरिकी साम्राज्यवाद ने वहाँ एक सोये हुए शेर को छेड़ने का काम किया है और इसकी कीमत उसे चुकानी ही होगी।

●

विशेष सामग्री

(पच्चीसवीं किस्त)

पार्टी की बुनियादी समझदारी

अध्याय – 9

पार्टी की ''तीन महान कार्यशैलियाँ''

एक क्रांतिकारी पार्टी के बिना मजदूर वर्ग क्रांति को कतई अंजाम नहीं दे सकता। लेनिन ने इस बात को बार-बार जोर देकर कहा था। स्तालिन और माओ ने भी बराबर इस बात पर जोर दिया और बीसवीं सदी की सभी सफल सर्वहारा क्रान्तियों ने भी इसे सत्यापित किया।

लेनिन ने सर्वहारा वर्ग की क्रान्तिकारी पार्टी के सांगठनिक उसूलों का निर्धारण किया और इसी फौलादी सांचे में बोल्शेविक पार्टी को ढाला। चीन की पार्टी भी बोल्शेविक पार्टी की ही उत्तराधिकारी थी। सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान, समाजवादी समाज में वर्ग-संघर्ष का संचालन करते हुए माओ के नेतृत्व में चीन की पार्टी ने अन्य युगान्तरकारी सैद्धान्तिक उपलब्धियों के साथ-साथ लेनिनवादी सांगठनिक सिद्धान्तों को भी और आगे विकसित किया।

सोवियत संघ और चीन में पूंजीवाद की पुनर्स्थापना के लिए बुर्जुआ तत्वों ने सबसे पहले यही जरूरी समझा कि सर्वहारा वर्ग की पार्टी का चरित्र बदल दिया जाये। हमारे देश में भी संसदीय रास्ते की अनुगामी नामधारी कम्युनिस्ट पार्टियां मौजूद हैं। भारतीय मजदूर क्रांति को सफल बनाने के लिए भारत में भी सर्वहारा वर्ग की एक सच्ची कान्तिकारी पार्टी खड़ी करने का काम सर्वोपरि है।

इसके लिए बेहद जरूरी है कि मजदूर वर्ग यह जाने कि असली और नकली कम्युनिस्ट पार्टी में क्या फर्क होता है और एक कान्तिकारी पार्टी कैसे खड़ी की जानी चाहिए।

इसी उद्देश्य से, फरवरी, 2001 अंक से हमने एक बेहद जरूरी किताब 'पार्टी की बुनियादी समझदारी' के अध्यायों का किस्तों में प्रकाशन शुरू किया है। इस अंक में पच्चीसवीं किस्त दी जा रही है। यह किताब सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान पार्टी-कतारों और युवा पीढ़ी को शिक्षित करने के लिए तैयार की गयी श्रृंखला की एक कड़ी थी। चीन की कम्युनिस्ट पार्टी की दसवीं कांग्रेस (1973) में पार्टी के गतिशील क्रान्तिकारी चरित्र को बनाये रखने के प्रश्न पर अहम सैद्धान्तिक चर्चा हुई थी, पार्टी का नया संविधान पारित किया गया था और संविधान पर एक महत्वपूर्ण रिपोर्ट प्रस्तुत की गयी थी। इसी नई रोशनी में यह पुस्तक् एक सम्पादकमण्डल द्वारा तैयार की गयी थी। मार्च, 1974 में पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, शंघाई से इस पुस्तक के प्रथम संस्करण की 4,74,000 प्रतियां छपीं। यह पुस्तक पहले चीनी भाषा से फांसीसी भाषा में अनूदित हुई और 1976 में प्रकाशित हुई। फिर नार्मन बेथ्यून इंस्टीच्यूट, टोरण्टो (कनाडा) ने इसका फ्रांसीसी से अंग्रेजी में अनुवाद कराया और 1976 में ही इसे प्रकाशित भी कर दिया। प्रस्तुत हिन्दी अनुवाद मूल पुस्तक के इसी अंग्रेजी संस्करण से किया गया है।

– सम्पादक

(पिछले अंक से आगे)

पार्टी सँविधान के अनुसार, पार्टी के सभी कामरेडों को ''व्यवहार से सिद्धान्त जोड़ने की, जन समुदाय के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध बनाये रखने की तथा आलोचना और आत्मालोचना पर अमल करने की शैली विकसित'' करनी चाहिए। पार्टी की ये तीन महान कार्यशैलियाँ स्वयं अध्यक्ष माओ द्वारा निरूपित एक श्रेष्ठ परम्परा हैं, और हमारी पार्टी की, जनता को एकजुट करने वाली तथा शत्रु को पराजित करने वाली बहुमूल्य विरासत हैं। समाजवादी क्रान्ति और निर्माण के लक्ष्य में और भी अधिक महान जीतें हासिल करने के लिए, कम्युनिस्ट पार्टी के प्रत्येक सदस्य को पार्टी की उत्कृष्ट कार्यशैली का अध्ययन करना चाहिए, उसकी हिफाजत करनी चाहिए तथा उसे अमल में लाना चाहिए।

''तीन महान कार्यशैलियाँ'' हमारी पार्टी की श्रेष्ठ परम्परा हैं

क्रान्तिकारी संघर्षों के लम्बे वर्षों के दौरान ढली, हमारी पार्टी की तीन महान कार्यशैलियाँ उन प्रमाणचिह्नों में से एक हैं जो बताते हैं कि बुर्जुआ और संशोधनवादी राजनीतिक पार्टियों से हमारी पार्टी किन मायनों में अलग है। अलग-अलग वर्गों की राजनीतिक पार्टियों की सोचने और काम करने की अलग-अलग शैलियाँ होती हैं। हमारी पार्टी अपने कर्मों के मार्गदर्शक के रूप में मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओ त्से-तुङ विचारधारा पर तथा द्वंद्वात्मक और ऐतिहासिक भौतिकवादी विश्व दृष्टिकोण पर हमेशा अपनी दृढ़ पकड़ बनाये रखती है। हमारी पार्टी हमें कर्तव्यनिष्ठा के साथ मार्क्सवाद-लेनिनवाद के सार्वभौमिक सत्य को अपने देश में क्रान्ति के ठोस व्यवहार से जोड़ने की तथा अध्ययन एवं जाँच पड़ताल चलाने और तथ्यों से सत्य का निगमन करने की कार्यशैली पर अडिग रहने की शिक्षा देती है। पार्टी हमें शिक्षा देती है कि जन समुदाय ही वास्तविक नायक है, कि सर्वहारा की मुक्ति का ध्येय करोड़ों जनता का ध्येय है। इसलिए, सभी परिस्थितियों में, हमें जन समुदाय पर भरोसा बनाये रखना चाहिए और उसमें विश्वास रखना चाहिए, उसके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध बनाना चाहिए तथा जन दिशा पर अमल करना चाहिए। हमारा विश्वास है कि चूँकि हमारी पार्टी सर्वहारा वर्ग और मेहनतकश जन-समुदाय के बुनियादी हितों का प्रतिनिधित्व करती है, इसलिए, जिस उद्देश्य पर यह कायम है, वह पूर्णत: न्यायसंगत है। इसलिए, हम कम्युनिस्ट अपनी हर कथनी और करनी में खुले और निष्कपट होते हैं, तथा आलोचना और आत्मालोचना को साहसपूर्वक लागू करते हैं। हमारी पार्टी की तीन महान कार्यशैलियाँ सर्वहारा की वर्ग-अभिलाक्षणिकताओं को और इसकी विशिष्ट राजनीतिक प्रकृति को प्रतिबिम्बित करती हैं। दूसरी ओर, सभी बुर्जुआ और संशोधनवादी पार्टियाँ व्यक्तिगत हितों पर आधारित होती हैं, जिन हितों का वे प्रतिनिधित्व करती हैं, वे शोषक वर्गों के हित होते हैं। उनका विश्व-दृष्टिकोण हमेशा भाववादी (प्रत्ययवादी) एवं आधिभौतिक होता है, और इससे यह बात साफ हो जाती है कि क्यों वे हमेशा सही और गलत को गड्डमड्ड कर देते हैं, क्यों उनकी करनी उनकी कथनी से मेल नहीं खाती तथा क्यों वे जन समुदाय को धोखा देते हैं, जनता से कटे रहते हैं और आलोचना-आत्मालोचना से भय खाते हैं। चूँकि सत्य उनके पक्ष में नहीं है, और चूँकि जनसमुदाय उनके साथ नहीं है, इसलिए वे अपनी नियति से बच नहीं सकते–इस धरती से उन्हें विलुप्त होना ही है।

पार्टी की कार्यशैली हमेशा इसकी लाइन से घनिष्ठतापूर्वक जुड़ी होती है। एक सुनिश्चित कार्यशैली एक सुनिश्चित लाइन के अनुरूप होती है, और कार्यशैली हमेशा एक सुनिश्चित लाइन की सेवा करती है। एक सही लाइन के मार्गदर्शन में, सर्वहारा की उत्कृष्ट कार्यशैली अपने सर्वोच्च अंश तक विकसित की जा सकती है, लेकिन यदि हम इस सही लाइन को छोड़ देते हैं और एक गलत लाइन लागू करने लगते हैं तो तमाम अस्वस्थ कार्यशैलियों और बुर्जुआ फैलाव की बुराइयों को देखने के लिए हम बाध्य होते हैं। अध्यक्ष माओ जब दक्षिण और ''वाम'' अवसरवादी लाइनों के विरुद्ध तीखे संघर्ष में हमारी पार्टी को नेतृत्व दे रहे थे, तो उन्होंने पार्टी में कार्यशैली को विकसित करने पर हमेशा बारीकी से ध्यान दिया। प्रथम क्रान्तिकारी गृहयुद्ध के दौरान अध्यक्ष माओ द्वारा लिखी गयी **'चीनी समाज में वर्गों का विश्लेषण'** (संकलित रचनाएँ, खण्ड-एक) नामक रचना चीनी क्रान्ति के ठोस यथार्थ के साथ मार्क्सवादी-लेनिनवादी क्रान्तिकारी सिद्धान्त को एकीकृत करने का एक शानदार उदाहरण है। लाल सेना की स्थापना के प्रारम्भिक दिनों में हमारी पार्टी और हमारी सेना को जनसमुदाय के साथ एकता बनाने की शानदार कार्यशैली और दीर्घकालिक संघर्ष का प्रशिक्षण देने के लिए अध्यक्ष माओ ने ''अनुशासन के तीन मुख्य नियमों और छह ध्यान देने योग्य बातों'' जो बाद में ''अनुशासन के तीन मुख्य नियमों और आठ ध्यान देने योग्य बातें'' के रूप में विकसित हुए) का निर्धारण किया। 1942 में येनान में दोष-निवारण आन्दोलन का व्यक्तिगत तौर पर नेतृत्व करते हुए अध्यक्ष माओ ने **''अध्ययन-शैली में सुधार करने के लिए मनोगतवाद के विरुद्ध संघर्ष करने, पार्टी-सम्बन्धों में शैली को सुधारने के लिए संकीर्णतावाद के विरुद्ध संघर्ष करने, और लेखन-शैली में सुधार के लिए घिसे-पिटे पार्टी-लेखन के विरुद्ध संघर्ष करने''** का आह्वान किया ('पार्टी की कार्यशैली में सुधार करो', संकलित रचनाएँ, खण्ड तीन) तथा इस तरह विचारधारा और कार्यशैली में दक्षिण और ''वाम'' अवसरवादी लाइनों के प्रभाव का सफाया कर दिया। सातवीं पार्टी कांग्रेस में, अध्यक्ष माओ ने, पार्टी-निर्माण में हमारे बुनियादी अनुभवों का गहन समाहार करते हुए, पार्टी की तीन महान कार्यशैलियों पर और अधिक रोशनी डाली तथा इस उत्कृष्ट परम्परा को नया संवेग प्रदान किया। हमारे देश की पूर्ण मुक्ति की पूर्वबेला में, सातवीं केन्द्रीय कमेटी के दूसरे पूर्ण अधिवेशन में अध्यक्ष माओ ने इस बात की ओर ध्यान आकृष्ट किया कि विजय के परिणामस्वरूप पार्टी में घमण्ड, लालच, आत्मसन्तोष और विलासप्रियता की भावनाएँ सिर उठा सकती हैं और उन्होंने समूची पार्टी को चेतावनी दी : **''कामरेडों को यह सिखाया जाना चाहिए कि वे नम्र और विवेकशील होने और घमण्ड व उतावलेपन से दूर रहने की अपनी कार्यशैली को बनाये रखें। कामरेडों को यह सिखाया जाना चाहिए कि वे सादा जीवन और कठोर संघर्ष की कार्यशैली को बनाये रखें''** ('सातवीं केन्द्रीय कमेटी के दूसरे पूर्ण अधिवेशन में रिपोर्ट', संकलित रचनाएँ, खण्ड-चार)। जब समूचा देश मुक्त हो गया, तो नम्रता, विवेकशीलता और कठोर संघर्ष की तीन महान कार्यशैलियों पर अडिग रहते हुए हमारी पार्टी ने बुर्जुआ विचारधारा की चाशनी लिपटी गोलियों के क्षयकारी हमलों को प्रभावी ढंग से नाकाम कर दिया, और इस तरह क्रान्ति एवं निर्माण के निरन्तर जारी फैलाव को सुनिश्चित बनाया। महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के बाद, और विशेष तौर पर लिन प्याओ की आलोचना करने और कार्यशैली को दोषमुक्त बनाने के अभियान के दौरान, तथ्यों से सत्य का निगमन करने और जन दिशा को लागू करने की पार्टी की कार्यशैली, तथा नम्रता, विवेकशीलता और कठोर संघर्ष की इसकी शानदार परम्परा–जिस कार्यशैली और जिस परम्परा को लिन प्याओ और उसके गुट ने अन्दर से नुकसान पहुँचाया था–एक नये विकास से होकर गुजरी, जिसके चलते समूची पार्टी नयी जीवन-शैली से लैस होकर आगे बढ़ी।

ऐतिहासिक अनुभव दिखलाता है कि पार्टी की तीन महान कार्यशैलियों के समूची पार्टी और सभी राष्ट्रीयताओं की जनता पर गहरे प्रभाव ने अध्यक्ष माओ की क्रान्तिकारी लाइन के अमल को सुनिश्चित किया है तथा क्रान्ति और निर्माण के विजयमान विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। पुरानी पीढ़ी के कम्युनिस्ट हमारी पार्टी की इस शानदार परम्परा से परिचित हैं लेकिन वे अभी भी इस प्रश्न का सामना कर रहे हैं कि नयी ऐतिहासिक परिस्थितियों में इसे आगे कैसे बढ़ायें जबकि बहुतेरे नये पार्टी सदस्यों के सामने इसे समझने, इसकी विरासत को अपनाने और इसे आगे बढ़ाने का सवाल खड़ा है। हमें अपनी पार्टी की इस शानदार परम्परा की निरन्तरता पीढ़ी दर पीढ़ी बनाये रखनी होगी; पार्टी के सुदृढ़ीकरण के लिए यह अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

(क्रमश:)

(पेज चार से आगे)

पन्तनगर गोलीकाण्ड ...

है और अन्यायपूर्ण भी लेकिन अब ठेकेदारी में यह 40 रुपये की दिहाड़ी में तब्दील हो चुका है। ठेकेदार की मातहती में चलने वाले सुरक्षा विभाग के बाद अब अन्य विभागों की भी यही स्थिति बनने वाली है। यही नहीं, अंशकालिक नियुक्तियों का जो अधिकार पहले विभागाध्यक्षों का था, अब वह भी उनसे छीना जा चुका है। 15 हजार एकड़ में स्थापित इस विशालकाय विश्वविद्यालय में रहने वाले सैकड़ों मजदूर के सामने बेरोजगारी सुरसा की तरह लगातार मुँह फैलाये जा रही है। लम्बे समय से मास्टर रोल पर कार्यरत जिन मजदूरों ने उच्च न्यायालय से नियमितीकरण का आदेश तक प्राप्त कर लिया है, वे भी दैनिक वेतन भोगी बनकर काम करने के लिए मजबूर हैं।

कुर्बानी के 25 वर्ष में इस विकट स्थिति की एक मूल वजह 5-6 यूनियनों में मजदूरों का बँटवारा है। कमोबेश सभी अपनी-अपनी दूकानदारियाँ चला रहे हैं, एक दूसरे की टाँग खींच रहे हैं। प्रतिरोध की स्थिति धूमिल की जा चुकी है। मजदूरों की ताकत बिखर गयी है। और यूनियनों द्वारा कोई ठोस कार्यक्रम नहीं लिया गया है। जबकि विश्वविद्यालय प्रशासन पूरे विश्वविद्यालय क्षेत्र में धरना-प्रदर्शन-सभा पर रोक का स्थगनादेश न्यायालय से लेकर अपनी मंशा जाहिर कर चुका है।

यही नहीं, विश्वविद्यालय में अमीरी-गरीबी के बीच एक विशाल खाई मौजूद है। एक तरफ यहाँ आलीशान ताराई भवन(कुलपति निवास) है तो दूसरी तरफ ब्लाकों में झोपड़ पट्टियाँ हैं जहाँ बिजली तक नही है। एक ओर जहाँ 'कैम्पस स्कूल' के रूप में मंहगा अंग्रेजी दां स्कूल है, वहीं ब्लाकों में मजदूरों के बच्चों की पढ़ाई के लिए मामूली सा स्कूल भी नही है। प्रफेसरों के बंगलों में इतनी जमीने हैं कि साल भर खाने के लिए अनाज, फल, सब्जी आदि पैदा करने के अलावा वे बेच भी लेते हैं तो मजदूरों को अपने पालतू जानवारों के लिए चारा तक खरीदना पड़ता है। हरित क्रांति की इस जन्मस्थली में हर तरफ शोषण व अन्याय का राज्य व्याप्त है।

ऐसे में 25 साल पहले की कुर्बानियों को याद करना और उससे प्रेरणा लेना बेहद जरुरी है। यहाँ की मेहनतकश आवाम को–विशेष रूप से नौजवानों को एक बार फिर आगे आना हो गा। एक बार फिर एक नयी शुरूआत करनी होगी। एक बार फिर से संकल्प बाधना होगा, संगठित होना होगा और अपने हक-हकूक के नये संघर्ष के लिए उन्हें कमर कसनी होगी। अन्याय के विरूद्ध विद्रोह न्याय संगत है।

तुम्हारे सदाचार की क्षय

• राहुल सांकृत्यायन

राहुल सांकृत्यायन सच्चे अर्थों में जनता के लेखक थे। वह आज जैसे कथित प्रगतिशील लेखकों सरीखे नहीं थे जो जनता के जीवन और संघर्षों से अलग-थलग अपने-अपने नेहनीड़ों में बैठे कागज पर रोशनाई फिराया करते हैं। राहुल सांकृत्यायन हमेशा जनता के संघर्षों के बीच रहे। गोराशाही के खिलाफ संघर्ष का मोर्चा हो या सामन्तों-जमीन्दारों के बर्बर शोषण-उत्पीड़न के खिलाफ किसानों की लड़ाई का मोर्चा हो, वह हमेशा अगली कतारों में रहे। अनेक बार जेल गये। यातनाएं झेलीं। जमीन्दारों के गुर्गों ने उनके ऊपर कातिलाना हमला भी किया लेकिन आजादी, बराबरी और इंसानी स्वाभिमान के लिए न तो वह कभी संघर्ष से पीछे हटे और न ही उनकी कलम रुकी। राहुल सांकृत्यायन यूरोपीय पुनर्जागरण काल के उन महामानवों सरीखे महामानव थे जो एक हाथ में कलम और दूसरे हाथ में तलवार लेकर लड़ते थे।

दुनिया की छत्तीस भाषाओं के जानकार राहुल सांकृत्यायन की अद्भुत मेधा का अनुमान इस बात से भी लगाया जा सकता है कि ज्ञान-विज्ञान की अनेक शाखाओं, साहित्य की अनेक विधाओं में उनको महारत हासिल थी। इतिहास, दर्शन, पुरातत्वें, नृतत्वशास्त्र, साहित्य-भाषा विज्ञान आदि विषयों पर वह अधिकारपूर्वक लिखते थे। उन्होंने उपन्यास, कहानी, नाटक, ललित निबन्ध, जीवनी, आत्मकथाएं, डायरी आदि साहित्य की लगभग सभी विधाओं में अधिकारपूर्व लेखनी उठायी। वोल्गा से गंगा, भागो नहीं दुनिया को बदलो, दर्शन दिग्दर्शन, मानव समाज, वैज्ञानिक भौतिकवाद, जय यौधेय, सिंह सेनापति, दिमागी गुलामी, तुम्हारी क्षय, साम्यवाद ही क्यों, बाइसवीं सदी आदि पचास से अधिक रचनाएं उनकी महान प्रतिभा का परिचय अपने आप करा देती हैं।

लेकिन राहुल जी के लिए ज्ञान कोई निजी सम्पत्ति नहीं थी और न ही वे विद्वान कहलाने के लिए लिखते थे। देश को शोषित-उत्पीड़ित जनता को हर प्रकार की गुलामी से आजाद कराने के लिए कलम को वह हथियार के रूप में इस्तेमाल करते थे। उनका मानना था कि "साहित्यकार जनता का जबर्दस्त साथी, साथ ही वह उसका अगुआ भी हैं वह सिपाही भी हैं और सिपहसालार भी।"

राहुल सांकृत्यायन का समूचा जीवन और कर्म एक सतत प्रवाहमान धारा के समान था। गति उनके लिए जीवन का दूसरा नाम था और गतिरोध एवं मृत्यु जड़ता। इसीलिए बनी-बनायी लीकों पर चलना उन्हें कभी गवारा नहीं हुआ। वह नयी राहों के खोजी थे। यह अकारण नहीं था। कि घुमक्कड़ी उनके स्वभाव में रच-बस गयी थी। लेकिन घुमक्कड़ी उनके लिए सिर्फ भूगोल की पहचान करना नहीं थी। वह सुदूर देशों की जनता के जीवन व इसकी संस्कृतियों से उसकी जिजीविषा से जान-पहचान करने के लिए यात्राएं करते थे।

समाज को पीछे की ओर धकेलने वाले हर प्रकार के विचार, रुढ़ियों, मूल्यों-मान्यताओं-परम्पराओं के खिलाफ उनका मन गहरी नफ़रत से भरा हुआ था। उनका समूचा जीवन व लेखन इनके खिलाफ विद्रोह का जीता-जागता प्रमाण है। इसीलिए उन्हें महाविद्रोही भी कहा जाता है। जनता के ऐसे ही सच्चे सपूत ***महाविद्रोही राहुल सांकृत्यायन की एक पुस्तिका 'तुम्हारी क्षय' बिगुल के पाठकों के लिए हम धारावाहिक रूप से प्रकाशित कर रहे हैं।*** *राहुल की यह निराली रचना आज भी हमारे समाज में प्रचलित रुढ़ियों के खिलाफ समझौताहीन संघर्ष की ललकार है।*

- सम्पादक

व्यभिचार

सद्-आचार अथात् श्रेष्ठ पुरुषों का आचार। श्रेष्ठ किसे कहते हैं? क्या श्रेष्ठ की कोटि में उस गरीब की गिनती हो सकती है जो ईमानदारी से की गई अपनी कमाई को खाने का हक न रखकर दाने-दाने का मुहताज है? नहीं, श्रेष्ठ से मतलब है पुराने-नये राजा, राजऋषि, बड़े-बड़े राजाओं के पुरोहित और गुरु-ऋषि-मुनि, जिन्होंने कि सदाचार-प्रतिपादक शास्त्र और स्मृतियाँ बनाई हैं। श्रेष्ठ से मतलब है पीर-पैगम्बर, मूसा दाऊद से, जो कि खुद राजा या शासक थे, अथवा किसी दूसरे तरीके से बहुत जन-धन के स्वामी बन गए थे। ऐसे "श्रेष्ठ" पुरुषों का चाल-व्यवहार तो दुनिया का सदाचार बना हुआ है। उनके सदाचार भी एक तरह के नहीं हैं। कहीं सोलह-सोलह हजार स्त्रियाँ कृष्ण और दशरथ जैसे सदाचारियों के यहाँ बतलाई जाती हैं। सुलेमान, दाऊद तथा दूसरे सामीय पैगम्बर भी इस बारे में बहुत "उदार" थे। आज भी हमारे यहाँ वाजिद अली शाहों की कमी नहीं है। अभी हाल ही में एक महाराजा मरे हैं जो कि इस बारे में दूसरे वाजिद अली शाह थे। सच तो यह है कि यदि धनिक ही हमारे सदाचार के आदर्श माने जायें, तो ऐसे सदाचार का तो न रहना ही भला है। एक पुरुष एक स्त्री के रहते दो-दो, चार-चार और अधिक विवाह भी कर सकता है, तो भी हिन्दू और इस्लाम धर्म के अनुसार उसके सदाचारी होने में कोई शंका नहीं उठ सकती, लेकिन इन धर्मों के अनुसार इसी स्वतंत्रता को लेकर यदि कोई स्त्री एक साथ दो पति रखे तो वह दुराचार हो जायेगा। आखिर दुनिया में ऐसे भी देश हैं जहाँ एक स्त्री का एक साथ कई पति रखना जरा भी अनुचित नहीं समझा जाता। तिब्बत में यह प्रथा आम है। वहाँ शायद ही कोई स्त्री मिलेगी जिसके अनेक पति न हों। और, यह बात तो हमारे पुराने इतिहास में भी मिलती है। पाँच पति रखने पर भी द्रौपदी भारत की प्रात: स्मरणीय पंचकन्याओं में से थीं। आखिर इसमें सदाचार है क्या? बहुत से देश हैं जहाँ पुराने समय से आज तक बहुपति-विवाह, बहुपत्नी-विवाह विहित समझा गया है और बहुत से ऐसे देश हैं जहाँ बहुपत्नी-विवाह, को उतना ही अनुचित समझा जाता है जितना कि बहुपति-विवाह को। यूरोप, अमेरिका, जापान ऐसे ही देशों में हैं। न्याय की दृष्टि से देखने पर तो यह साफ मालूम पड़ता है कि यदि एक स्त्री के अनेक पति होना खराब है, तो एक पुरुष को अनेक पत्नियाँ होना भी उतना ही खराब है। आजकल के जीवित प्रधान धर्मों में कोई भी ऐसा नहीं है जो सिर्फ एक पति-विवाह और एक पत्नी-विवाह को ही उचित ठहराता हो तथा दोनों तरह के बहुविवाहों का निषेध करता हो।

लेकिन यह यौन सदाचार सिर्फ बाहरी बात है। भीतर देखने पर तो हालत और भी वीभत्स मालूम होती है। हर एक धनी और शक्तिशाली व्यक्ति पुराने समय से आज तक विवाहिता स्त्रियों के अतिरिक्त भी अनेक दासियों और रखेलियों रखता आया है और वेश्यावृत्ति तो लक्ष्मी की शोभा समझी जाती है। यदि पुरुष उतनी ही चंचलता दिखलाये तो वह मर्द-बच्चा कहलाकर बच जाता है, लेकिन 'वेश्या' शब्द का लांछन सिर्फ स्त्री पर लगता है। बचपन से हर एक व्यक्ति तथा चिरकाल से हमारा समाज ऐसे वातावरण में पलता चला आया है जिसमें पुरुष के लिए सदाचार की जो कसौटी कायम है, उस पर जब स्त्री को तौलने लगते हैं, तो हम आश्चर्य करते हैं। दुनिया भर में 'सदाचार', 'सदाचार' चिल्लाया जा रहा है। हिन्दुस्तानियों को यह नहीं समझना चाहिए कि इसका ठेका सिर्फ उन्हीं को मिला है। यूरोप, अमेरिका, एशिया सभी मुल्कों में इस पर जोर दिया जाता है, धर्म और ईश्वर पर विश्वास रखने वाले तो खास तौर से इसके लिये जमीन-आसमान एक करते हैं। लेकिन साथ ही सदाचार का जितना कम पालन धर्मानुयायी और ईश्वर-भक्त करते हैं, जितनी अवहेलना उनके यहाँ इस नियम की होती है, उतनी और जगह नहीं। रूस से धर्म और ईश्वर का राज उठ गया है, लेकिन आप दुनिया में सिर्फ वही एक देश पायेंगे जहाँ से वेश्यावृत्ति एकदम उठ गई है। क्या हमारे देश में ऐसे सदाचार की खिल्ली उड़ाने वाले सबसे ज्यादा हिन्दू-तीर्थ और हिन्दू-मठ नहीं हैं? अयोध्या में चले जाइये और वहाँ के बड़े से बड़े अवतारी भगवद्भक्त और सिद्ध-महात्मा को ले लीजिए, उनके बारे में भी पूछ लीजिए कि जिन्हें मरे अभी कुछ ही साल हुए हैं। मालूम होगा, सदाचार के सम्बन्ध में कैसे-कैसे वीभत्स काण्ड वहाँ होते हैं। ये स्थान स्वाभाविक ही नहीं, अस्वाभाविक व्यभिचार के सबसे बड़े अड्डे हैं। बाहर से जाने वाली भोली-भाली जनता, जिन पर तप, ब्रह्मचर्य, सदाचार की साक्षात मूर्ति समझकर अपना तन-मन-धन वारती है, वे हैं जघन्य कामुकता के साक्षात अवतार। ऐसे आदमियों के मुँह से ब्रह्मचर्य और सदाचार के लम्बे-लम्बे उपदेश सुनकर तो हठात कहना पड़ता है—निर्लज्जता, तेरा बेड़ा गर्क हो। साधु-सन्यासियों के इस विषय के क्रियात्मक विचार उससे बिल्कुल ही दूसरे हैं, जैसे कि वे उनके श्रीमुख से निकलते हैं। भारत में कितनी ही धर्म-मण्डलियाँ गुप्त व्यभिचार में आसानी पैदा करने के लिए कायम हुई हैं, कितने ही भगवद्भवन और भजनाश्रम लोगों की आँखों में धूल झोंकने को स्थापित हुए हैं। चाहे युक्तप्रांत में घूमिये, चाहे गुजरात में, चाहे पंजाब को देखिये, चाहे बंगाल को, चाहे नेपाल को जाइये, चाहे मद्रास को, सभी के घर में मिट्टी का चूल्हा है, सभी नागनाथ साँपनाथ बराबर हैं। सदाचार में जो जितना ही पतित है, वह उतना ही अधिक सुन्दर लच्छेदार शब्दों में उस पर व्याख्यान दे सकता है। नगरों और देशों के दृष्टान्त देने की आवश्यकता नहीं। जहाँ आप हैं, वहीं घरों और चहारदीवारियों के भीतर सभ्यता और दिखावे के बाहरी लिबास को हटाकर देखिये। आपको मालूम होगा कि ब्रह्मचर्य और सदाचार के नियम जितने ही कड़े बनाये गये हैं, उतनी ही आसानी से उन्हें तोड़ा जाता है। हमारे एक महान राजनीतिक नेता का ब्रह्मचर्य पर बड़ा जोर है, लेकिन पास में, उनकी छाया में, उनके बड़े-बड़े अनुयायियों ने जिस प्रकार बराबर उन्हें तोड़ने में ही उन नियमों का पालन किया है, उससे तो यही मालूम होता है कि जब बाँध से बूँद भर पानी का रुकना सम्भव नहीं, तो ऐसे बाँध की जरूरत ही क्या?

सदाचार के सम्बन्ध में दरअसल "मनसि अन्यत्-वचसि अन्यत्" का पक्का अनुयायी हमारा समाज दीख पड़ता है। भीतर की सारी पोल को देखते हुए कितनी तन्मयता के साथ हम आपस में इसकी धार्मिक चर्चा करते हैं? उस वक्त मालूम होता है कि हमारे समाज में कोई उसके अवहेलना करने वाला है ही नहीं! या हम किसी दूसरे जगत में बैठकर वार्तालाप कर रहे हैं। निश्चय ही हम लोग जब वास्तविक स्थिति पर विचार करते हैं, तब मालूम होता है कि हमारे समाज में ब्रह्मचर्य और सदाचार एक भारी ढकोसले से बढ़कर कोई महत्व नहीं रखता। ताज्जुब होता है कि हजारों बरसों से हमारे समाज ने ऐसी आत्मवंचना की धुँआधार प्रचार करके कौन-सा लाभ समझा है? 'मर्ज बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की'—के अनुसार बल्कि जितनी ही शताब्दियाँ बीतती गईं उतना ही हमारे सदाचार का तल नीचे गिरता गया है—परिणाम में नहीं, उसमें तो देशकाल-भेद से कोई अन्तर नहीं पड़ा, हाँ, जुगुप्सित प्रक्रिया में।

जिन देशों में यौन सम्बन्ध पर हल्के नियंत्रण रखे गये हैं, वहाँ के लोग इस विषय में ज्यादा अनुकरणीय आचरण रखते हैं। नियमों और निर्बन्धों की अधिकता सिर्फ दूसरों की आँख में धूल झोंकने के लिए हमें अधिक निपुण बनाने में सफल हुई है। रोमन-कैथोलिक जैसे कितने ही धर्म ऐसे अपराधों की स्वीकृति के लिए बहुत जोर देते हैं। वहाँ गृहस्थ स्त्री-पुरुष, साधु-साध्वनी किसी माननीय व्यक्ति के सामने समय-समय पर अपने अपराधों की स्वीकार करते हैं। शायद यह प्रथा इसलिए चलाई गई कि "बीती ताहि बिसारि दे, आगे की सुधि लेय।" लेकिन परिणाम क्या होता है? पहले एक-दो बार अपराध-स्वीकृति में जो थोड़ा संकोच होता है, वह भी पीछे जाता रहता है। मानस-शास्त्रवेत्ता ठीक कहते हैं कि अपूर्ण यौन इच्छाएँ और भी उग्र रूप धारण कर मनुष्य के अंतस्तल में मौके की ताक में पड़ी रहती हैं। धर्मों ने सबसे ज्यादा जोर जिस पर दिया है, उसकी इस प्रकार से सार्वदेशिक, सार्वकालिक, सार्वजनीन अवहेलना देखकर तो यही कहना पड़ता है कि इस ढोंग, इस बकवास से फायदा क्या?

हमारे देश के एक बड़े आदमी हैं। धर्म पर वह अपनी बड़ी अनुरक्ति दिखलाते हैं। भगवान का नाम लेते-लेते गद्गद होकर नाचने लगते हैं और ऐसे प्रदर्शन में काफी रुपया खर्च करते रहते हैं। उनकी हालत यह है कि जिस वक्त बड़े वेतन वाले पद पर थे, तब कभी रिश्वत बिना लिए नहीं छोड़ते थे और स्त्रियों के सम्बन्ध में तो मानो सभी नियमों को तोड़ देने के लिए भगवान की ओर से उन्हें आज्ञा मिली है।

एक प्रात:स्मरणीय राजर्षि को मरे अभी बहुत दिन नहीं हुए हैं। उनकी भगवद्भक्ति अपूर्व थी। सबेरे ईश्वर-भक्ति पर एक पद बनाये बिना वह चारपाई से उठते न थे और पूजा-पाठ में उनके घंटो बीत जाते थे। लेकिन, दूसरी ओर हाल यह था कि अपने नगर और राज्य में जहां किसी सुन्दरी का पता लगा उसे मंगवाकर ही छोड़ते थे।

एक तरुण विधवा रानी थीं। उनके पास बड़ी भारी जायदाद थी। एक बड़े तीर्थ में भगवत्-चरणों में लवलीन हो अपना दिन काटती थीं। धार्मिक उत्सव, पूजापाठ में खुलकर रुपया खर्च करती ही थीं, साथ उनके यहाँ बहुत से विद्यार्थियों को भी रखकर भोजन दिया जाता था। रानी साहिबा अपनी आँख से देखकर विद्यार्थी को भरती होने देती थीं और तरुण विद्यार्थी रात-रात भर पार्थिव पूजा में उनकी सहायता कराते थे। अत्यन्त वृद्धा होने पर भी उनकी अपार काम-पिपासा में कोई अन्तर नहीं आया।

एक बड़े भारी हिन्दू धर्म के नेता और विष्णु के साक्षात अवतार महात्मा की बात है। उन्होंने हिन्दू-धर्म के प्रचार और रक्षा के लिए बहुत विशाल आयोजन किया। उसमें भारत के बड़े-बड़े राजा, सेठ-साहूकार शामिल थे। धार्मिक जगत में जितनी उनकी धाक रही, उतनी कम ही किसी की होगी। लेकिन उनकी भीतरी लीला को देखिए तो मालूम होगा कि रासलीला करने के लिए साक्षात् कन्हैया ही अवतार लेकर चले आये हैं। सुन्दरी विधवाओं पर आपका खास तौर से अनुराग रहता है।

एक और महाराज रहे हैं जिनकी शास्त्रीय विद्वता, धर्म-परायणता, दान और सदाचार की धाक सारे भारत पर रही है। लेकिन भीतर से उपासना, कुमारी-पूजा आदि धार्मिक अनुष्ठानों के नाम पर वह अपनी सभी वासनाओं की पूर्ति के लिए स्वतंत्र थे और ऐसे धार्मिक पुरुष से परिवार वाले लोग बहुत बचकर रहना चाहते थे।

मद्यपान

शराब की मुमानियत संसार के कई प्रधान धर्म करते हैं। इस्लाम भी अपने को इसका जानी दुश्मन कहता है। शराब पीना भारी दुराचार माना जाता है। लेकिन धनिकों में पिछले तेरह सौ साल के भीतर कितनों ने इस नियम की पाबन्दी की है? बहुत जगह तो शराब की दुकानों के मालिक मुसलमान हैं। जिस वक्त मुसलमानी सल्तनतों ने शराब के खिलाफ कड़ी-कड़ी सजाएँ मुकर्रर की थीं, उस वक्त भी धनी लोगों को शराब पीने में बाधा नहीं होती थी। हिन्दुओं में भी कितने ही सम्प्रदाय मद्यपान को महापाप समझते हैं। लेकिन कितनी जातियाँ हैं जिनके धनिक उससे बचे हुए हैं? ब्राह्मण, बनिया, राजपूत, जिस किसी के पास खर्च करने के लिए इफरात पैसा है, बेखटके पीता है, और जात वाले टुक-टुक ताकते रह जाते हैं। शराब के पीछे लाठी लेकर फिरने वाले महात्मा जी के अनुयायियों में भी कितने बड़े-बड़े महापुरुष हैं जो भीतरी तौर से इसके बारे में अपने गुरू से भारी मतभेद रखते हैं, चाहे मद्य-निषेध की व्यवस्था देने में वह किसी से पीछे रहने वाले न भी हों।

(शेष अगले अंक में जारी)

लेनिन के जन्मदिन (22 अप्रैल) के अवसर पर

कम्यून की स्मृति में

चालीस साल गुजर चुके हैं, जब पेरिस कम्यून की उद्घोषणा हुई थी। फ्रांस के मजदूरों ने परम्परानुसार 18 मार्च, 1871 की क्रान्ति के नर-नारियों की स्मृति में सभाओं तथा प्रदर्शनों का आयोजन कर उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित की। मई के अंत में वे गोलियों से उड़ाये गये कम्यूनवालों की, भयंकर "मई सप्ताह" का शिकार बनने वालों की समाधियों पर फिर फूल चढ़ायेंगे और उनकी समाधियों के सामने वे तब तक अथक रूप से लड़ने की शपथ लेंगे, जब तक कम्यूनवालों के विचारों की पूर्ण विजय नहीं हो जाती, उन द्वारा धरोहर के रूप में सौंपे गये ध्येय की पूर्ण पूर्ति नहीं हो जाती।

फ्रांस के ही नहीं, अपितु सारे विश्व के सर्वहारा पेरिस कम्यून के कार्यकर्ताओं का अपने पूर्वगामियों के रूप में क्यों सम्मान करते हैं? और कम्यून की धरोहर क्या है?

कम्यून का जन्म स्वत:स्फूर्त रूप से हुआ। उसे किसी ने भी नियोजित ढंग से तैयार नहीं किया था। जर्मनी के विरुद्ध असफल युद्ध, घेरेबन्दी के समय झेले गये कष्ट, सर्वहारा वर्ग के बीच बेरोजगारी तथा छोटे बुर्जुआ वर्ग के बीच तबाही:ऊपरी वर्गों के विरुद्ध तथा घोर अक्षमता प्रदर्शित करने वाले अधिकारियों के विरुद्ध जन-साधारण का रोष, अपनी स्थिति से असंतुष्ट तथा विभिन्न सामाजिक व्यवस्था के लिये प्रयत्नशील मजदूर वर्ग के बीच धुँधली-सी बेचैनी, जनतंत्र की नियति के बारे में आशंकाएँ उत्पन्न करने वाली राष्ट्रीय सभा का प्रतिक्रियावादी स्वरूप–ये सब तथा दूसरे बहुत से कारक पेरिस की आबादी को 18 मार्च की क्रान्ति की ओर धकेलने के लिए सूत्रबद्ध हो गये, जिसने सत्ता को अप्रत्याशित रूप से राष्ट्रीय गार्ड के हाथों में, मजदूर वर्ग तथा उससे मिल जानेवाले टुटपुँजिया वर्ग के हाथों में सौंप दिया था।

यह इतिहास में अभूतपूर्व घटना थी। उस समय तक सत्ता आम तौर पर जमींदारों तथा पूँजीपतियों के, यानी उनके विश्वसनीय लोगों के हाथों में होती थी, जिन्हें लेकर उसका गठन होता था, जिसे सरकार कहते थे। लेकिन 18 मार्च की क्रांति के उपरान्त, जब श्री थियेर की सरकार अपने सैनिक, पुलिस तथा अफसरों को लेकर पेरिस से भाग गयी थी, जनता स्थिति की स्वामी बन गयी तथा सत्ता सर्वहारा वर्ग के हाथों में पहुँच गयी। परन्तु आधुनिक समाज में सर्वहारा वर्ग का, जिसे पूँजी आर्थिक दृष्टि से अपना दास बनाकर रखती है, राजनीतिक दृष्टि से तब तक प्रभुत्व नहीं हो सकता, जब तक वह उन जंजीरों को नहीं तोड़ देता, जो उसे पूँजी के साथ बाँधकर रखती है। इसी कारण यह आवश्यक था कि कम्यून का आन्दोलन अवश्यंभावी रूप से समाजवादी रंग ग्रहण करता, यानी बुर्जुआ वर्ग के प्रभुत्व को, पूँजी के प्रभुत्व को उलट देने तथा समकालीन सामाजिक व्यवस्था की ठीक **बुनियादों** को नष्ट कर देने के प्रयत्न शुरू करता।

शुरू-शुरू में यह आन्दोलन घोर उलझनभरा, अनिश्चित था। उसमें वे देशभक्त भी शामिल हुए, जिन्हें आशा थी कि कम्यून जर्मनों के साथ युद्ध फिर से शुरू कर देगा, उसे सफल समापन तक पहुँचायेगा। उसका छोटे दुकानदारों ने भी समर्थन किया, जिनके तबाह हो जाने का खतरा था, अगर कर्जों तथा मकान-भाड़े का भुगतान मुल्तवी न किया जाता (इन्हें मुल्तवी करने से सरकार ने इनकार कर दिया था, परन्तु कम्यून ने कर दिया था)। आखिरी चीज, शुरू-शुरू में कम्यून को एक हद तक बुर्जुआ जनतंत्रवादियों की सहानुभूति भी प्राप्त थी, जिन्हें भय था कि प्रतिक्रियावादी राष्ट्रीय सभा ("गँवार", वहशी जमींदार) राजतंत्र की पुन:स्थापना कर देगी। परन्तु इस आन्दोलन में मुख्य भूमिका निस्सन्देह मजदूरों (खास तौर पर पेरिस के कारीगरों) ने अदा की, जिनके बीच द्वितीय साम्राज्य के अन्तिम सालों में सक्रिय समाजवादी प्रचार किया गया था और जिनमें से बहुत-से इंटरनेशनल तक में थे।

केवल मजदूर ही अन्त तक कम्यून के प्रति वफादार रहे। बुर्जुआ जनतंत्रवादी तथा टुटपुँजियाई उससे शीघ्र अलग हो गये : पहले आन्दोलन के क्रान्तिकारी-समाजवादी, सर्वहारा स्वरूप को देखकर भयभीत हो गये; दूसरों ने उस समय उससे नाता तोड़ दिया, जब उन्होंने देखा कि उसकी पराजय अवश्यंभावी है। केवल फ्रांसीसी सर्वहारा निर्भीकतापूर्वक, अथक रूप से **अपनी** सरकार का समर्थन करते रहे, अकेले वे उसके लिए, यानी मजदूर वर्ग की मुक्ति के ध्येय के लिए, तमाम मेहनतकशों के वास्ते उज्ज्वल भविष्य के लिए लड़े और मर-मिटे।

अपने भूतपूर्व साथियों द्वारा परित्यक्त, समर्थन से वंचित कम्यून की पराजय अपरिहार्य थी। फ्रांस के सारे बुर्जुआ, सारे जमींदार, शेयर-दलाल, कारखानेदार, सारे छोटे-बड़े डाकू, सारे शोषक उसके विरुद्ध ऐक्यबद्ध हो गये। बिस्मार्क का (जिन्होंने एक लाख फ्रांसीसी युद्धबन्दी क्रान्तिकारी पेरिस को कुचलने के लिए छोड़ दिये थे) समर्थन प्राप्त यह बुर्जुआ गँठजोड़ जाहिल किसानों तथा प्रांतीय टुटपुँजिया लोगों को पेरिस के सर्वहारा वर्ग के विरुद्ध कर देने और आधे पेरिस के चारों ओर फौलादी घेरा बनाने में सफल हो गया (बाकी आधा पेरिस जर्मन सेना द्वारा घेर लिया गया था)। फ्रांस के कुछ बड़े शहरों (मार्सेल्ज, लियां, सेंत-एतियें, दिजां, आदि) में भी मजदूरों ने सत्ता छीनने, कम्यून की उद्घोषणा करने तथा पेरिस की मदद के लिए पहुँचने का प्रयत्न किया, परन्तु ये प्रयत्न शीघ्र असफलता के साथ समाप्त हो गये। सर्वहारा विद्रोह का सबसे पहले झण्डा बुलन्द करने वाले पेरिस को अपनी ही शक्ति के सहारे रहने के लिए छोड़ दिया गया और उसका विनाश होना अवश्यंभावी था।

विजयी सामाजिक क्रान्ति के लिए कम से कम दो शर्तों की पूर्ति आवश्यक होती है–अति विकसित उत्पादक शक्तियाँ तथा सर्वहारा की तैयारी। परन्तु 1871 में इन दोनों शर्तों की पूर्ति का अभाव था। फ्रांसीसी पूँजीवाद अभी कम विकसित था तथा फ्रांस उस समय मुख्यत: टुटपुँजियाइयों (कारीगरों, किसानों, दुकानदारों, आदि) का देश था। दूसरी ओर वहाँ मजदूरों की कोई पार्टी नहीं थी, तैयार तथा लम्बे समय से प्रशिक्षित मजदूर वर्ग नहीं था, जिसके बड़े भाग को अभी अपने कार्यभार तथा उनकी पूर्ति के साधन कतई स्पष्ट नहीं दिखाई दे रहे थे। न कोई महत्वपूर्ण सर्वहारा राजनीतिक संगठन था और न शक्तिशाली ट्रेड-यूनियनें तथा सहकारी समितियाँ..

परन्तु उस समय कम्यून के पास जिस मुख्य वस्तु का अभाव था, वह था वक्त, आगे-पीछे नजर दौड़ाने, अपने कार्यक्रम की पूर्ति का बीड़ा उठाने की फुरसत। वह काम में जुट भी न पाया था कि वेर्साई में जमी तथा पूरे बुर्जुआ वर्ग द्वारा समर्थित सरकार ने पेरिस के विरुद्ध युद्ध की कार्रवाइयाँ शुरू कर दीं। कम्यून को सबसे पहले आत्मरक्षा के बारे में सोचना पड़ा। ठीक अंत तक, 21-28 मई तक उसे और किसी बारे में संजीदगी से सोचने का मौका नहीं मिला।

फिर भी इन प्रतिकूल अवस्थाओं के बावजूद, अपने अल्पकालिक अस्तित्व के बावजूद कम्यून कुछ पग उठाने में सफल रहा, जो उसके वास्तविक महत्व तथा उद्देश्यों को अभिलक्षित करते हैं। कम्यून ने स्थायी सेना, सत्ताधारी वर्गों के हाथों के इस दानवी अस्त्र के स्थान पर पूरी जनता को हथियारबन्द किया। उसने धर्म को राज्य से पृथक करने की घोषणा की, धार्मिक पंथों को राज्य से दी जाने वाली धनराशियाँ (यानी पुरोहित-पादरियों को राजकीय वेतन) बन्द कर दीं, जनता की शिक्षा को सही अर्थों में धर्म निरपेक्ष बना दिया और इस तरह चोगाधारी पुलिसवालों पर करारा प्रहार किया। विशुद्ध रूप से सामाजिक क्षेत्र में कम्यून बहुत कम हासिल कर पाया, परन्तु यह बहुत कम भी जनता की, मजदूरों की सरकार के रूप में उसका स्वरूप बहुत साफ तौर पर उजागर करता है। नानबाइयों की दुकानों में रात्रि-श्रम पर, पाबन्दी लगा दी गयी; जुर्माने की प्रणाली का, जो मजदूरों के साथ कानूनी रूप प्राप्त डकैती थी, खात्मा कर दिया गया। आखिरी चीज, वह प्रसिद्ध आज्ञप्ति जारी की गयी, जिसके अनुसार मालिकों द्वारा परित्यक्त अथवा बंद किये गये सारे मिल-कारखाने और वर्कशाप उत्पादन फिर से शुरू करने के लिए मजदूर आर्टेलों को सौंप दिये गये। और मानो सच्ची जनवादी, सर्वहारा सरकार के अपने स्वरूप पर जोर देने के हेतु कम्यून ने यह निर्देश दिया कि समस्त प्रशासनिक तथा सरकारी अधिकारियों के वेतन मजूदर की सामान्य उजरत से अधिक नहीं होंगे और किसी भी सूरत में 6000 फ्रांक (200 रूबल से कम प्रति मास) प्रति वर्ष से ज्यादा नहीं होंगे।

इस तमाम पगों ने पर्याप्त स्पष्टता के साथ यह दिखा दिया कि कम्यून जनता की गुलामी और शोषण पर आधारित पुरानी दुनिया के लिए घातक खतरा था। इसी कारण बुर्जुआ समाज तब तक चैन महसूस नहीं कर सका, जब तक पेरिस की नगर दूमा पर सर्वहारा वर्ग का लाल झण्डा फहराता रहा। और जब संगठित सरकारी शक्तियाँ क्रान्ति की बुरी तरह संगठित शक्तियों पर हावी होने में सफल हो गयीं, तो जर्मनों द्वारा पराजित और परास्त देशभाइयों के विरुद्ध जवाँमर्दी दिखाने वाले बोनापार्त के जनरलों, इन फ्रांसीसी रेन्नेनकांफों और मेल्लेर-जाकोमेल्स्कियों ने ऐसा नरसंहार आयोजित किया, जैसा पेरिस ने पहले कभी नहीं देखा था। लगभग 30,000 पेरिसवासियों को नृशंस सिपाहियों ने गोलियों से भून डाला, लगभग 45,000 गिरफ्तार किये गये, जिनमें से बहुतों को बाद में मौत की सजा दी गयी, हजारों को काला पानी की सजा दी गयी तथा खास इलाकों में बसाया गया। पेरिस कुल मिलाकर अपने लगभग 1,00,000 बेटे-बेटियों से हाथ धो बैठा, जिनमें सारे व्यवसायों के सर्वोत्तम मजदूर भी थे।

बुर्जुआ वर्ग को संतोष हो गया। "अब हमने समाजवाद को लम्बे अर्से के लिए ठिकाने लगा दिया है," उसके नेता, रक्तपिपासु बौना थियेर खून की नदी बहाने के बाद बोले, जिसमें उन्होंने तथा उनके जनरलों ने पेरिस के सर्वहारा वर्ग को डुबो दिया था।

परन्तु इन बुर्जुआ कौओं ने व्यर्थ ही कांय-कांय की। कम्यून के कुचले जाने के बाद कोई छ: साल के भीतर ही, जब कम्यून के अनेक सिपाही अभी जेलों में या निर्वासन में यंत्रणा भुगत रहे थे, फ्रांस में एक नया मजदूर आंदोलन उठ खड़ा हुआ। अपने पूर्ववर्तियों के अनुभव से समृद्ध, लेकिन उनकी पराजय से लेशमात्र निरुत्साहित न होने वाली एक नयी समाजवादी पीढ़ी ने उस झण्डे को उठा लिया, जो कम्यून के सिपाहियों के हाथ से नीचे गिर गया था। उसने उस झण्डे को विश्वासपूर्वक पकड़ा और वह "सामाजिक क्रान्ति जिन्दाबाद! कम्यून जिन्दाबाद!" का सिंहनाद करते हुए साहसपूर्वक आगे बढ़ी। और कुछेक साल बाद नयी मजदूर पार्टी तथा उस द्वारा पूरे देश में शुरू किये गये आंदोलन ने कम्यूनवालों की, जो अब भी सरकार के हाथों में थे, रिहा करने के लिए सत्ताधारी वर्गों को विवश किया।

कम्यून के सिपाहियों का स्मरण करते हुए उनका फ्रांस के मजदूर ही नहीं, अपितु पूरे संसार के सर्वहारा सम्मान करते हैं। इसलिए कि कम्यून ने किसी स्थानीय अथवा संकीर्ण राष्ट्रीय कार्यभार के लिए नहीं, अपितु पूरी मेहनतकश मानवजाति, समस्त पद-दलितों तथा उत्पीड़ितों की मुक्ति के लिए लड़ाई की थी। सामाजिक क्रान्ति के लिए सबसे अग्रगामी योद्धा के रूप में कम्यून ने वहाँ सर्वत्र सहानुभूति प्राप्त की है, जहाँ कहीं दुख झेलता तथा संघर्ष करता सर्वहारा वर्ग है। उसका जीवन-मरण, मजदूरों की सरकार, जिसने दुनिया की राजधानी को छीनकर दो माह से ऊपर अपने हाथों में रखा, सर्वहारा के वीरतापूर्ण संघर्ष तथा अपनी पराजय के बाद उस द्वारा झेली गयी यंत्रणाएँ–इन सबने लाखोंलाख मजदूरों के मन को तरंगित किया, उनमें आशा जगायी तथा समाजवाद के लिए उनकी सहानुभूति अर्जित की। पेरिस में तोपों की गर्जन ने सर्वहारा वर्ग की सबसे पिछड़ी श्रेणियों को गहरी नींद से जगाया तथा क्रान्तिकारी-समाजवादी प्रचार की संवृद्धि को संवेग प्रदान किया। इसी कारण कम्यून का ध्येय मरा नहीं; वह आज तक हममें से प्रत्येक में जीवित है। कम्यून का ध्येय–यह सामाजिक क्रान्ति का ध्येय, मेहनतकशों की पूर्ण राजनीतिक तथा आर्थिक मुक्ति का ध्येय है, यह पूरी दुनिया के सर्वहारा वर्ग का ध्येय है। और इस अर्थ में वह अमर है।

15 (28) अप्रैल,
1911 को प्रकाशित।

(दस खण्डों वाली संकलित रचनाओं के खण्ड-4 में पृ. 132-137 पर)

एकता के प्रश्न पर लेनिन का दृष्टिकोण

[भारत के कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी आन्दोलन में फूट और एकता और फिर फूट का सिलसिला विगत तीन दशकों से भी अधिक समय से लगातार जारी है। इसके बुनियादी कारणों पर विचार किये बिना, हर कुछ वर्षों के अन्तराल पर यह या वह ग्रुप एकता वार्ता या एकता के लिए तालमेल कमेटी के गठन के प्रस्ताव जोर-शोर से उछालता है। ऐसे लोग उस मुर्गे जैसा आचरण करते हैं जो सोचता है कि सबेरा अब तक इसलिए नहीं हुआ है कि उसने बाँग नहीं दी है। कभी-कभी ऐसे आह्वान स्वयं को "एकता के महान लक्ष्य को लेकर अत्यधिक चिन्तित और समर्पित" सिद्ध करने के लिए भी किये जाते हैं। यदि मंशा ठीक हो तो भी सवाल यहाँ किसी की सदिच्छा का नहीं है। अबतक की स्थिति के वास्तविक बुनियादी कारणों की पड़ताल किये बिना या तो एकता कायम ही नहीं हो सकती, या यदि कायम हो भी जाये तो टिक नहीं सकती। सर्वहारा वर्ग के आन्दोलन और उसके बीच व्यापक आधार के अभाव में ज्यादातर कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी ग्रुप कम्युनिस्ट बुद्धिजीवी ग्रुप बनकर रह गये हैं। एकता ऐसे ग्रुपों के बीच के समझौतों से नहीं बल्कि वर्गचेतन मजदूरों के संघर्षों की जरूरत और दबाव से हासिल की जा सकती है। दूसरे, जिन ग्रुपों की संरचना और कार्यप्रणाली ही बोल्शेविक न हो, वे मिलकर देश स्तर की एक बोल्शेविक पार्टी नहीं गठित कर सकते, भले ही वे विचारधारा एवं कार्यक्रम के प्रश्नों पर सहमत दीख रहे हों। इस मसले पर अपने विचार आगे कभी हम विस्तार से रखेंगे। फिलहाल, अपने पाठकों के लिए एक महत्वपूर्ण विचारणीय सामग्री के तौर पर हम लेनिन का एक उद्धरण यहाँ दे रहे हैं। एकता के प्रति अत्यधिक चिन्ता दिखाकर स्वयं को ज्यादा जिम्मेदार क्रान्तिकारी सिद्ध करने के लिए आतुर-उतावले क्रान्तिकारियों की असलियत समझने में यह उद्धरण विशेष सहायक होगा।–सम्पादक]

"मजदूरों को एकता की जरूरत अवश्य है और इस बात को समझना महत्वपूर्ण है कि उन्हें छोड़कर और कोई भी उन्हें यह एकता "प्रदान" नहीं कर सकता, कोई भी एकता प्राप्त करने में उनकी सहायता नहीं कर सकता। एकता स्थापित करने का "वचन" नहीं दिया जा सकता–यह झूठा दम्भ होगा, आत्म प्रवंचना होगी; एकता बुद्धिजीवी ग्रुपों के बीच "समझौतों" द्वारा "पैदा" नहीं की जा सकती। ऐसा सोचना गहन रूप से दुखद, भोलापनभरा और अज्ञानताभरा भ्रम है।

एकता को लड़कर जीतना होगा, और उसे स्वयं मजदूर ही, वर्ग चेतन मजदूर ही अपने दृढ़ अथक परिश्रम द्वारा प्राप्त कर सकते हैं।

इससे ज्यादा आसान दूसरी चीज नहीं हो सकती कि "एकता" शब्द को गज-गज भर लम्बे अक्षरों में लिखा जाये, उसका वचन दिया जाये और अपने को "एकता" का पक्षधर घोषित किया जाये। परन्तु, वास्तव में, एकता आगे बढ़े हुए मजदूरों के परिश्रम तथा संगठन द्वारा ही आगे बढ़ायी जा सकती है।"

-व्ला.इ. लेनिन 'त्रुदोवाया प्राव्दा', अंक 2
30 मई, 1914

बेर्टोल्ट ब्रेष्ट की दो कविताएँ

डाक्टर के सामने एक कामगार का बयान

हमें पता है, हम कैसे बीमार पड़ते हैं!
जब हम बीमार होते हैं, बताया जाता है
कि तुम ही हो, जो हमारा इलाज करोगे।

दस साल तक–कहा जाता है
मेहनत से तुमने पढ़ाई की है
जनता के पैसों से बने स्कूलों में
ताकि तुम इलाज कर सको और अपनी तालीम के लिए
तुमको भी खर्च करना पड़ा है।
यानी कि तुम इलाज कर सकते हो।

कर सकते हो तुम इलाज?

जब हम तुम्हारे पास आते हैं
हमारे चीथड़े उतार लिये जाते हैं
और तुम हमारे नंगे बदन को ठोंक-ठोंककर जाँचते हो।
पर हमारी बीमारी की वजह जानने के लिए
उन चीथड़ों पर एक नजर डालना ही काफी रहा होता।
वजह एक ही है
हमारे तन और हमारे कपड़ों के हाल की।

हमारे कन्धों का गठिया
कहते हो तुम, नमी की वजह से है,
उसी की वजह से हमारे कमरों में धब्बे पड़ गये हैं।
जरा यह तो बताओ:
यह नमी कहाँ से आती है?

मेहनत बहुत अधिक और खाना कम
और इस तरह हम कमज़ोर और दुबले पड़ गये हैं।
तुम्हारा नुस्खा है :
हमें अपना वजन बढ़ाना है।
फिर तुम सरकण्डे से भी कह सकते हो
उसे पानी से परहेज़ रखना है।

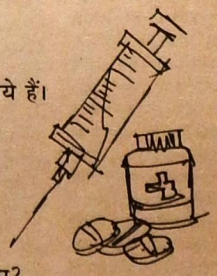

हमारी ख़ातिर वक़्त ही कितना है तुम्हारे पास?
हम तो देखते ही हैं : तुम्हारे कमरे के एक गलीचे की कीमत
लगभग उतनी ही है, जितनी कि तुम
हमारी पाँच हज़ार बीमारियों से कमा लेते हो।
शायद तुम कह सकते हो, गलती
तुम्हारी नहीं है। हमारे कमरे में
दीवार पर पड़ा धब्बा भी
ऐसा ही कहा करता है।

1938

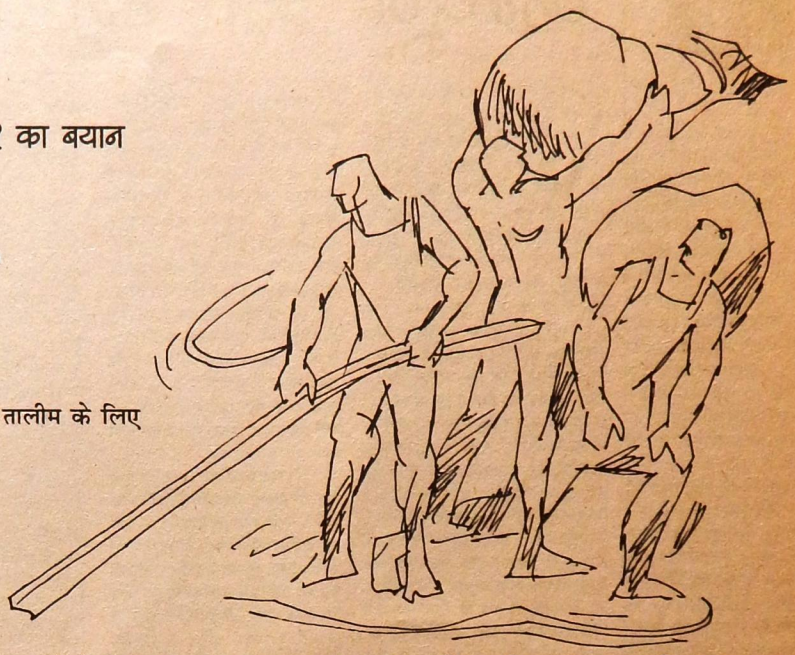

एक पढ़ सकने वाले कामगार के सवाल

किसने बनाया सात द्वारों वाला थीब?
किताबों में लिखे हैं सम्राटों के नाम।
क्या सम्राट पत्थर ढो-ढोकर लाये?
और बार-बार विनष्ट बैबीलोन
किसने उसे हर बार फिर से बनाया? किन घरों में
रहते थे सोना जैसे चमकते लीमा के मजूरे?
कहाँ बिताई शाम, जब चीन की दीवार बनकर ख़त्म हुई,
उसके राजगीरों ने? महान रोम
भरा पड़ा है विजय तोरणों से। किसने उन्हें खड़ा किया? किस पर
हासिल की सीज़रों ने जीत? चारणगीत समृद्ध बैंज़टियम में
क्या महल ही महल थे वहां रहनेवालों के लिए?
दन्तकथा के अटलाण्टिस में भी
उस रात, जब समन्दर उसे निगल गया,
चीखे होंगे डूबनेवाले अपने गुलामों की खातिर।

नौजवान सिकन्दर ने भारत जीता।
अकेले उसने?
सीज़र ने गालों को मात दी।
क्या उसके साथ एक रसोइया तक न था?
स्पेन का फिलिप रोता रहा, जब उसका बेड़ा
तहस-नहस हो गया। और कोई नहीं रोया?
सातसाला जंग में फ्रीडरिष द्वितीय की जीत हुई। जीता कौन
उसके अलावा?
हर पन्ने पर एक जीत।
किसने पकाए जीत के भोज?
हर दस साल पर एक महान पुरूष।
किसने चुकाए उनके हिसाब?

इतनी सारी रपटें
इतने सारे सवाल।

1935

पद

मनबहकी लाल

हम ठलुअन के, ठलुए हमारे।
ग्रंथन बिच झींगुर जस चिपकिन्हि, जिनगी की हरिहरी बिसारे।
लायब्रेरि में पोथी घोखत, 'थियरी' बूकत साँझ-सकारे।
भ्रान्ति भये सब सपन क्रान्ति के, अस गुरुमंत्र सिखाये प्यारे।
गुरू भये पेरी एण्डरसन, चेला हुइ गये अन्ना हजारे।
'बैकडोर' से छुपके पहुँचे, फण्डिंग एजेंसियन दुआरे।
ऐसिहिं राह चुनो तुम ऊधो, मौज करेंगे ललुए तुम्हारे।

वैश्वीकरण, संचार क्रान्ति और नई विश्व व्यवस्था

• बिंकटेश्वर प्रसाद

(दूसरी किस्त)

पूँजीवाद के आरम्भिक दौर में जो प्रतिद्वंद्विता मौजूद थी, आज उसका स्वरूप बदल गया है। पहले कोई एक कम्पनी बाजार को प्रभावित नहीं कर पाती थी, बल्कि वे ही कम्पनियां जो कम दाम में बेहतर उत्पाद देने की स्थिति में थीं, बाजार को प्रभावित कर पाती थीं। मगर पूँजी के केन्द्रीकरण ने हालात पूरी तरह से बदल दिये हैं। मुख्य उद्योगों में प्रतिद्वंद्विता अब कुछ ही कम्पनियों में सिमटकर रह गई है। अब वहाँ प्रतिद्वंद्विता का आधार उत्पाद की कीमतों में कमी नहीं बल्कि उत्पाद में भिन्नता और उग्र मार्केटिंग होता है और इसके जरिये बाजार के ज्यादा से ज्यादा हिस्से पर काबिज होने की कोशिश की जाती है। बाजार शोध से लेकर विक्रय संचार यानी विज्ञापन तक मार्केटिंग के सभी चरणों में संचार प्रौद्योगिकी सहायक होती है। दूसरे शब्दों में संचार के नये माध्यमों के विकास में निगम क्षेत्र को अपने लिये नये बाजार खुलने की सम्भावना नजर आती है। माइक्रोसॉफ्ट के अध्यक्ष बिल गेट्स इसे स्वीकार करते हैं। उनका मानना है कि जो निगम संचार माध्यमों के जितने बड़े हिस्से पर नियंत्रण करेगा, वह उतने ही ज्यादा लोगों के घरों और कार्यस्थलों तक पहुँच पायेगा।

संचार क्रान्ति के साथ भी कुछ मिथक जुड़े हैं। इनमें सबसे बड़ा मिथक तो यह है कि जनमाध्यमों के विस्तार ने पूँजीवाद को समाप्ति के कगार पर ला दिया है। पूँजीवादी चिंतक जॉर्ज गिल्डर का दावा है कि नई संचार प्रौद्योगिकी असमानता पर आधारित प्रणालियों को नकारती है और इसके फलस्वरूप आर्थिक शक्ति संस्थाओं से व्यक्तियों की ओर खिसक रही है। बिल गेट्स का मानना है कि दुनिया 'घर्षण विहीन पूँजीवाद' की ओर बढ़ रही है। यह पूँजीवाद का नया चरण है जिसमें बाजार की पूर्णता का आधार पूर्ण सूचना होगी। इसमें एकाधिकार रहित स्वस्थ प्रतियोगिता के साथ बाजार उपलब्ध होगा, जहाँ प्रत्येक खरीदार हर वस्तु की कीमत जानता है और प्रत्येक विक्रेता यह जानता है कि खरीदार उसके माल के लिए कितना भुगतान करने का इच्छुक है। गेट्स का दावा है कि 'यह हमें एक नई दुनिया में ले जायेगा जहाँ कम घर्षण और कम खर्चोंला पूँजीवाद होगा। यह क्रेताओं का स्वर्ग होगा।'

संचार प्रौद्योगिकी का अब तक जो विस्तार हुआ है, उसने निश्चय ही संचार के क्षेत्र में महत्वपूर्ण बदलाव किये हैं। इलेक्ट्रानिक्स और उपग्रह संचार प्रणाली ने हमें ऐसे कई यंत्र दिये हैं जिनकी कल्पना भी कुछ साल पहले तक नहीं की जा सकती थी। इंटरनेट के जरिये व्यक्ति अब अपने निजी कम्प्यूटर पर टेलीफोन, टेलीविजन और फैक्स की सुविधा एक साथ हासिल कर सकता है। अपनी वेबसाइट के जरिये वह दुतरफा संचार करने में भी सक्षम हो गया है। अब व्यक्ति को संचार के वे सब साधन उपलब्ध हैं जिनके लिये पहले उसे अलग-अलग एजेंसियों के पास जाना पड़ता था और जिस पर उसका कोई नियंत्रण नहीं था। लेकिन सबसे अहम सवाल तो यह है कि यह प्रणाली किनकी सेवा के लिए है और किनको फायदा पहुँचायेगी? सूचना का निर्माण, प्रसारण और उपभोग जिस प्रौद्योगिकी पर निर्भर होगा, उन पर अधिकार रखने वाले और जिन तक सूचना पहुँचेगी, उनका समाज एक कैसे होगा? प्रसिद्ध मीडिया विश्लेषकों माइकल डाउसन और जॉन फोस्टर का कहना है कि संचार के क्षेत्र में जो भी प्रौद्योगिक क्रान्ति घटित हुई है और उसमें लोकतांत्रिकरण की जितनी भी सम्भावनाएँ क्यों न निहित रही हों, अगर वह मौजूदा सामाजिक और आर्थिक शक्ति के तहत विकसित होती है तो वह सूचना की नई इजारेदारियों को बढ़ायेगी। मार्केटिंग और नई संचार प्रौद्योगिकी का संयोजन कुछ कम्पनियों द्वारा उच्च लाभ और बाजार के ज्यादा हिस्से पर नियंत्रण को सम्भव बनायेगा और इससे पूँजी के संकेन्द्रण को प्रोत्साहन मिलेगा।

जनसंचार के नये माध्यम के रूप में प्रेस राजसत्ता के लिए भी चुनौती बनकर सामने आया। इंग्लैण्ड में क्राउन और जनता के बीच संघर्ष ने पत्रकारिता को जन्म दिया। अखबारों ने वहाँ क्राउन की सत्ता सीमित करने और पार्लियामेण्ट को स्थापित करने में अहम भूमिका निभाई। पर इसके विपरीत भारत में ब्रिटिश पार्लियामेण्ट का आदेश मानने वाली सत्ता ने ही प्रेस को नियमित करने के नाम पर कई तरह की पाबंदियाँ लगाईं। 19वीं शताब्दी की शुरुआत में कुछ थोड़े से पढ़े-लिखे भारतीयों की बातें अखबार के माध्यम से इसी तरह के अन्य लोगों तक पहुँच रही थीं। शहरों तक सीमित इस नये उभरते मध्य वर्ग में से कई उन जमींदार परिवारों से आये थे जो अंग्रेजी राज की आधारशिला थे। इसके बावजूद अंग्रेजों ने प्रेस और अखबारों पर प्रतिबन्ध लगाना जरूरी समझा।

लेकिन इसका यह मंतलब नहीं निकाला जाना चाहिए कि प्रेस खुद जनता का सही प्रतिनिधित्व करने के लिए प्रतिबद्ध होता है। यह इस बात पर निर्भर करता है कि वह किनके हित के लिए काम कर रहा है। यूरोप में चर्च और क्राउन कारोबारी वर्ग की आकांक्षाओं के विस्तार के आड़े आ रहे थे। इसलिए वहाँ उन्होंने प्रेस का साथ दिया। भारत में भी आजादी के पहले कुछ ऐसी ही कहानी दुहराई गई। पर जैसे ही इसकी सम्भावना बनी कि स्वयं अखबार निकालना एक व्यवसाय हो सकता है तो बड़ी पूँजी ने इसे अपने नियंत्रण में ले लिया। प्रेस का संचालन भी व्यवसाय की तरह होने लगा और वह पूँजी के व्यापक हितों का माध्यम बन कर सामने आया। यहाँ इस बात को नजरअंदाज नहीं किया जाना चाहिए कि भले ही कारोबारी वर्ग के लिए अखबार निकालना एक व्यवसाय है लेकिन वे यह भी जानते हैं कि इससे विचारों का भी उत्पादन होता है और अगर अखबार उनके नियंत्रण में हो तो वे बड़ी हद तक जनमत को अपने खिलाफ जाने से रोक सकते हैं। मगर यह तभी सम्भव है जब अखबार ज्यादा से ज्यादा लोगों तक पहुँचे और जनहितैषी दिखे। इसलिए अखबार की स्वतंत्रता और निष्पक्षता का घटाटोप खड़ा किया गया। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और किसी विचारधारा विशेष से प्रभावित हुये बिना अखबार निकालने के दावे किये गये और अपने व्यावसायिक हितों को इन दावों की ओट में रखा गया। इसके लिए यह तक कहा गया कि प्रेस लोकतंत्र का चौथा खम्भा है और उस पर राजसत्ता का कोई दबाव नहीं होना चाहिए ताकि वह जनता की आवाज बन सके। इस तरह हम देखते हैं कि भाषा और लिपि के समान प्रेस भी अपने भीतर तमाम सम्भावनाएँ रखने के बावजूद नई तरह की प्रभुसत्ता को कायम करने का जरिया बना।

'संचार क्रान्ति' की गैर-क्रान्तिकारिता को अच्छी तरह तभी समझा जा सकता है जब हम आज की एकध्रुवीय विश्व-व्यवस्था को और इसमें संचार प्रौद्योगिकी की भूमिका को समझें। जनसंचार के आधुनिक साधनों का इस्तेमाल कर कैसे तथाकथित 'आयरन कर्टेन' के भीतर रह रहे देशों को 'खुले समाज' में रूपांतरित किया गया, इसे हम देख चुके हैं। चार बड़ी समाचार एंजसियो–एसोसियेटेड प्रेस (ए पी), यूनाइटेड प्रेस इंटरनेशनल (यू पी आई), रायटर और एजंसी फ्रांस प्रेस (ए एफ पी) की भूमिका इसमें निर्णायक रही। लेकिन इसके साथ ही न्यूज कारपोरेशन, डिस्ने, टाइम वारनर, अमेरिका ऑनलाइन लिमिटेड, वेस्टिंग हाउस, सियाग्राम, फिलिप्स और हवास जैसी कम्पनियों को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। फिल्मों, किताबों, संगीत कैसटों, टेलीविजन कार्यक्रमों और एनिमेटेड फिल्मों का निर्माण करने वाली इन कम्पनियों के अपने अखबार, पत्रिकाएँ, रेडियो स्टेशन, केबल कम्पनियाँ और टेलीविजन नेटवर्क हैं। डिजिटल संचार के आधुनिक साधन इंटरनेट पर भी इन्हीं और ऐसी ही कुछ अन्य कम्पनियों का वर्चस्व है। प्राय: ये कम्पनियाँ इलेक्ट्रॉनिक फर्मों से सम्बद्ध हैं और खेलकूद, मनोरंजन पार्क, खुदरा बिक्री केन्द्रों और विश्राम गृहों पर भी अधिकार रखे हुये हैं। ये अपनी अनुपूरक प्रकृति का फायदा उठाती हैं जिसके कारण ये लोगों को विकल्पहीनता का अहसास कराने में कामयाब होती हैं।

वियतनाम, क्यूबा, लीबिया, इराक, युगोस्लाविया, ग्रेनाडा, लेबनान, उत्तर कोरिया, मिस्र, सूडान, कम्बोडिया, अंगोला, निकारागुआ, पनामा, लाओस, अल सल्वाडोर, क्रोएशिया, फिलस्तीन, अफगानिस्तान। ऐसे देशों की एक लम्बी श्रृंखला बन सकती है जहाँ की लोकतांत्रिक सरकारों को अमेरिका और उसके मित्र देशों ने उखाड़ फेंका या उखाड़ फेंकने के लिए सैन्य व खुफिया कार्रवाईयाँ कीं। दूसरी ओर सऊदी अरब, जाँबिया, पाकिस्तान, इजराइल और जिम्बाब्वे जैसे उदाहरण भी हैं जहाँ की सरकारों के हर भले-बुरे फैसले का समर्थन किया गया। अमेरिकी सरकार मानवीय और लोकतांत्रिक मूल्यों की बात करती है। इसी आधार पर इस साल के शुरू में राष्ट्रपति जॉर्ज डब्ल्यू बुश ने इराक, उत्तर कोरिया और ईरान को 'शैतान की धुरी' करार दिया और इसे नेस्तनाबूद करने की कसम ली। अमेरिका ने हमेशा खुद के तंत्र द्वारा की गई हिंसा को "वैदिकी हिंसा" साबित करने की कोशिश की है। जनसंचार माध्यम उसके रवैये को ऐसे वैचारिक ढाँचे में पेश करते हैं जो एकमात्र विकल्प के रूप में दिखाई दे। विकल्पहीनता का यह अहसास लोगों को तब होने लगता है जब वे हर कहीं एक-सा स्वर सुनते हैं। जब वे अखबार खोलते हैं तो वहाँ उन्हें वही विचार मिलता है जो समाचार चैनलों में दिखाया गया होता है। जब फिल्मों और धारावाहिकों के माध्यम से भी वे वही समझ ग्रहण करते हैं तब उन्हें यकीन करना पड़ता है कि हाँ! ठीक ऐसा ही है। उसे भिन्न सोचने और समझने का उन्हें अवसर ही नहीं मिलता। ऐसा नहीं है कि दूसरी तरह के विचारों का नितान्त अभाव होता है। लेकिन चूँकि उनका वर्चस्व नहीं होता इसलिए जन माध्यम उन्हें प्रमुखता नहीं देते और आम तौर पर वे हाशिये पर बने रहते हैं।

सच यह है कि जन माध्यमों और संचार प्रौद्योगिकी पर विकसित देशों के आर्थिक-राजनीतिक सत्ता-सम्पन्न वर्ग का कब्जा है और इनकी मदद से वह नई विश्व-व्यवस्था स्थापित करने का प्रयास कर रहा है। जन-सामान्य की आशा-आकांक्षाओं और वैकल्पिक विचारों को वह आगे नहीं आने देता। यह भी सच है कि इस प्रौद्योगिकी ने दुनिया भर में एक सुखी वर्ग (सुखी समाज नहीं) पैदा किया है। पर यह सच नहीं है कि अपने आप में नई प्रौद्योगिकी की प्रकृति में सत्ता के केन्द्रीकरण और आर्थिक वैषम्य की प्रवृत्ति निहित है। वास्तव में वर्ग विभाजित समाज में नई प्रौद्योगिकी किस वर्ग का हित साधन करेगी, इसका फैसला विज्ञान और प्रौद्योगिकी के भीतर नहीं, बाहर होता है। यह फैसला वैज्ञानिकों और प्रौद्योगिकी विशेषज्ञों द्वारा नहीं, उस वर्ग द्वारा किया जाता है। जिसका राजनीतिक-आर्थिक सत्ता पर प्रभुत्व है या जो राजनीतिक प्रक्रिया और निर्णय के संस्थानों पर दबाव डालने में सक्षम है।

(समाप्त)

पंजीयन संख्या - 71980/99, डाक पंजीयन संख्या - LW-NP/349/2001

जन्मतिथि (9 अप्रैल) और पुण्यतिथि (14 अप्रैल) के अवसर पर

ग़रीब किसानों और मज़दूरों के "राहुल बाबा"

बन्द कमरों के वामपंथी विद्वान लोग मरते हैं और उनकी यादें उनके लिखे ग्रंथों और उनपर लिखे ग्रंथों तक में सिमटकर रह जाती हैं जिन्हें कभी-कभी तो उन्हीं के वारिस रद्दी के भाव कबाड़ी को बेच देते हैं। बीच-बीच में शोधछात्र और विद्वान लोग स्वर्गीय वामपंथी विद्वानों के कृतित्व का खोज-पता लगाते रहते हैं और नये-नये ग्रंथ लिखकर पुस्तकालयों की आलमारियां भरते रहते हैं। लेकिन जो वामपंथी बुद्धिजीवी सच्चे मायने में क्रान्तिकारी बुद्धिजीवी होते हैं, जो वास्तव में जनता के आदमी होते हैं, जो जनता के जीवन और संघर्षों के बीच रहते हुए जनता के बारे में लिखते हैं, उनके भविष्य के बारे में, मुक्ति-स्वप्नों के बारे में, मुक्ति-मार्ग के बारे में लिखते हैं, उसकी असली परम्परा के बारे में लिखते हैं, उनकी स्मृतियां किताबों में दफ्न नहीं होतीं, वे जनता के दिलों में सदा जीवित रहते हैं। चाहे हुकूमत उनके नाम पर संस्थान या पुरस्कार न शुरू करे, चाहे विद्वत् समाज उनपर शोध न करे, जनता उनकी स्मृतियों को कभी धूमिल नहीं पड़ने देती। राहुल सांकृत्यायन एक ऐसे ही बुद्धिजीवी थे। वे पूरी तरह श्रमजीवियों के आदमी थे। वे एक योद्धा लेखक थे, एक सच्चे कर्मजीवी थे।

राहुल जी का जीवन अपने आप में आज के उन बुद्धिजीवियों के लिए एक मिसाल है जो जनता की दुर्दशा और क्रान्ति के बारे में बड़ी-बड़ी बातें करते हैं, लेख-कविता-कहानी-नाटक आदि लिखते हैं, और फिर पद-पुरस्कार पाने के लिए सत्ताधीशों और मठाधीशों की गणेश-परिक्रमा करने निकल पड़ते हैं। जिस समय राहुल को जरा-सा इशारा भर करने से कोई भी पद-ओहदा-पुरस्कार मिल सकता था, उस समय वे बिहार और उत्तर प्रदेश के गांवों में घूम-घूमकर किसान सभा खड़ी करने में जुटे थे। जब दुनिया के कई मुल्कों की सरकारें उन्हें अपने यहां ऊँचे पद देकर बुला रही थीं, तब वह अमवारी में किसानों की अगुवाई करते हुए पुलिस की लाठी से अपना सिर फोड़वा रहे थे। वह चाहते थे तो विद्वत्ता से भरे अनमोल ग्रंथ रच सकते थे जो उन्हें दुनिया में चोटी के विद्वानों में और ऊँचा स्थान दिलाते, लेकिन मजदूरों-किसानों की मुक्ति के विचार को अपना लेने के बाद उन्होंने अपनी अपार प्रतिभा का बड़ा हिस्सा जनता को जगाने के लिए सीधी-सरल भाषा में छोटी-छोटी पुस्तकें, कहानियां, नाटक आदि लिखने में लगा दिया।

पूर्वी उत्तर प्रदेश के आजमगढ़ जिले के छोटे से गांव पन्दहा में केदारनाथ पाण्डेय के रूप में जन्मे राहुल ने बचपन में ही उस ठहरे हुए, रूढ़ियों में जकड़े समाज से विद्रोह किया और घर से भाग गये। इधर-उधर घूमने के बाद वह साधुओं की एक मण्डली में शामिल हो गये और फिर 13 साल की उम्र में एक मठ के महन्त बन गये। मठ में रहते हुए उन्होंने हिन्दू धर्म के ढोंग-पाखण्ड, और विकृतियों को नजदीक से देखा और उसे छोड़कर आर्यसमाजी हो गये।

"ये धार्मिक महात्माओं के मठ और आश्रम ढोंग के प्रचार के लिए खुली पाठशालायें हैं, और धर्म प्रचार क्या पूरे सौ सैकड़े नफे का रोजगार है। अधिकांश लोग इसमें अपने व्यवसाय के ख्याल से जुटे हुए हैं।"

एक युवा आर्यसमाजी साधू के रूप में उन्होंनें देश भर का भ्रमण किया और समाज को रूढ़ियों के खिलाफ अलख जगाते घूमते रहे। इसी दौरान क्रान्तिकारियों और कम्युनिस्टों से भी वह मिलते रहे और आजादी की लड़ाई से उनका जुड़ाव हुआ। भारतीय समाज के सदियों पुराने गतिरोध, अंधविश्वास, कूपमंडूकता और जाति-पांत जैसी सामाजिक बुराइयों को लेकर उनके विद्रोही मन में बेचैनी बढ़ती रही और उन्हें लगने लगा कि आर्यसमाज इन सवालों का हल नहीं कर सकता।

ऊँच-नीच के बन्धनों और रूढ़ियों से मुक्त दर्शन की खोज उन्हें बौद्ध धर्म और दर्शन की ओर ले गयी और वह बौद्ध भिक्षु बन गये। तभी उन्होंने गौतम बुद्ध के बेटे के नाम पर अपना नाम राहुल रखा। बौद्ध भिक्षु के रूप में उन्होंने कई देशों की यात्राएँ कीं और तिब्बत के मठों में दबे पड़े सैकड़ों दुर्लभ बौद्ध ग्रंथों को 22 खच्चरों पर लादकर भारत लाये, और पहली बार दुनिया को उनके बारे में मालूम पड़ा। बौद्ध धर्म हिन्दू धर्म की पोंगापंथी, छुआ-छुत, भेदभाव और घटियाई से काफी हद तक मुक्त और भौतिकवादी दर्शन पर आधारित था, लेकिन राहुल के दिमाग में लगातार उठते सवालों के जवाब उसके पास भी नहीं थे। समानता पर टिके, अन्याय, शोषण और हर किस्म के भेदभाव से मुक्त समाज बनाने के रास्ते की खोज उन्हें मार्क्सवादी विचारधारा तक ले गयी। उन्होंने गेरूआ चोगा उतारकर मजदूरों-किसानों के लिए लड़ने और उनके दिमागों पर कसी बेड़ियों को तोड़ डालने को अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया।

दूसरे विद्वानों की तरह राहुल सांकृत्यायन भी आरामदेह कमरों और बड़े-बड़े पुस्तकालयों में बैठकर भारी-भारी पोथियां लिख सकते थे। वह कई भाषाएँ जानते थे। इतिहास, दर्शन और भाषा से लेकर दर्जनभर विषयों के किसी भी पहलू को लेकर ऐसी किताबों लिख सकते थे जो उन्हें शोहरत की चोटी पर पहुंचा सकती थीं। लेकिन उन्होंने जो रास्ता चुना वह आलीशान महलों की ओर नहीं, गांवों की धूल और धूपभरी पगडण्डियों की ओर जाता था। इतिहास की प्रगति को रोकने वाली नकारात्मक परम्पराओं पर प्रचण्ड प्रहार करना और रूढ़ियों की धज्जियां उड़ा देना राहुल के चिन्तन का केन्द्रबिन्दु था। हर तरह की शिथिलता, गतिरोध, कूपमण्डूकता, अंधविश्वास, तर्कहीनता, यथास्थितिवाद, पुनरुत्थानवाद और आगे के बजाय पीछे देखते रहने के वे कट्टर शत्रु थे और उन्होंने इन पर करारी चोट करनी शुरू कर दी।

आम लोगों की बोलचाल की भाज़ा में **भागो नहीं (दुनिया को) बदलो, नइकी दुनिया, मेहरारून के दुरदसा, दिमागी गुलामी, तुम्हारी क्षय, साम्यवाद ही क्यों** जैसी छोटी-छोटी किताबें लिखकर राहुल ने लोगों को जगाना शुरू कर दिया। साथ-साथ उन्होंने गांव-गांव घूमकर किसानों और गरीबों को जगाना और अंग्रेज हुकूमत तथा जमींदारों के खिलाफ लड़ने के लिए संगठित करना भी शुरू किया। कई बार उन्हें पकड़कर जेल में डाल दिया गया लेकिन जेल में भी वह लगातार लेखन करते रहे। उनकी कई किताबें तो अलग-अलग जेलों में ही लिखी गईं।

जनता की एकता को बांटने वाली और करोड़ों लोगों को अपने देश के भीतर ही जानवरों जैसी दशा में रखने वाली जाति प्रथा पर राहुल ने तीखी चोट की और उसे तोड़ डालने के लिए लोगों को जगाते रहे। उन्होंने कहा, **"जाति-भेद न केवल लोगों को टुकड़े-टुकड़े में बांट देता है, बल्कि साथ ही यह सबके मन में ऊंच-नीच का भाव पैदा करता है। हमारे पराभव का सारा इतिहास बतलाता है कि हम इसी जाति-भेद के कारण इस अवस्था तक पहुंचे। ये सारी गन्दगियां उन्हीं लोगों की तरफ से फैलाई गयी हैं जो धनी हैं या धनी होना चाहते हैं। सबके पीछे ख्याल है धन बटोरकर रख देने या उसकी रक्षा का। गरीबों और अपनी मेहनत की कमाई खाने वालों को ही सबसे ज्यादा नुकसान है, लेकिन सहस्राब्दियों से जात-पांत के प्रति जनता के अन्दर ख्याल पैदा किये गये हैं, वे उन्हें अपनी वास्तविक स्थिति की ओर नजर दौड़ाने नहीं देते। स्वार्थी नेता खुद इसमें सबसे बड़े बाधक हैं।"**

आजादी के आन्दोलन में ही धर्म का प्रवेश हो चुका था। कांग्रेस साम्प्रदायिक राजनीति का विरोध तो करती थी लेकिन खुद भी धर्म का इस्तेमाल करने से नहीं चूकती थी। लेकिन राहुल सांकृत्यायन ने उसी समय इस बात को पहचान लिया था कि धार्मिक बंटवारे पर चोट करना बेहद जरूरी है। उन्होंने सभी धर्मों में व्याप्त कुरीतियों का ही विरोध नहीं किया बल्कि बेलागलपेट कहा कि धर्म गुजरे जमाने की चीज बन चुका है और अब यह केवल जनता को बांटने और सत्ताधारियों की गद्दी सलामत रखने का औजार बन चुका है। उन्होंने साफ कहा, "धर्मों की जड़ में कुल्हाड़ा लग गया है, और इसलिए अब मजहबों के मेल-मिलाप की बातें भी कभी-कभी सुनने में आती हैं। लेकिन, क्या यह सम्भव है? 'मजहब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना'–इस सफेद झूठ का क्या ठिकाना। **अगर मजहब बैर नहीं सिखलाता तो चोटी-दाढ़ी की लड़ाई में हजार बरस से आजतक हमारा मुल्क पागल क्यों है? पुराने इतिहास को छोड़ दीजिए, आज भी हिन्दुस्तान के शहरों और गांवों में एक मजहब वालों को दूसरे मजहब वालों के खून का प्यासा कौन बना रहा है? कौन गाय खाने वालों से गो खाने वालों को लड़ा रहा है? असल बात यह है–'मजहब तो है सिखाता आपस में बैर रखना। भाई को है सिखाता भाई का खून पीना।' हिन्दुस्तान की एकता मजहबों के मेल पर नहीं होगी, बल्कि मजहबों की चिता पर कौए को धोकर हंस नहीं बनाया जा सकता। कमली धोकर रंग नहीं चढ़ाया जा सकता। मजहबों की बीमारी स्वाभाविक है। उसका मौत को छोड़कर इलाज नहीं है।"**

किसानों की लड़ाई लड़ते हुए भी राहुल ने इस बात को नहीं भुलाया कि केवल अंग्रेजों से आजादी और जमीन मिल जाने से ही उनकी समस्याओं का अन्त नहीं हो जायेगा। उन्होंने साफ कहा कि मेहनतकशों की असली आजादी साम्यवाद में ही आयेगी। उन्होंने लिखा, **"खेतिहर मजदूरों को खयाल रखना चाहिये कि उनकी आर्थिक मुक्ति साम्यवाद से ही हो सकती है, और जो क्रान्ति आज शुरू हुई है, वह साम्यवाद पर ले ही जाकर रहेगी। उसके सिवा भले दिनों को दिखाने वाला दूसरा कोई रास्ता नहीं है।"**

वे बिना रुके काम में जुटे रहते। भारतीय समाज की हर बुराई, हर किस्म की दिमागी गुलामी, हर तरह के अन्धविश्वास, तमाम गलत परम्पराओं पर वह चोट करना चाहते थे, उनके विरुद्ध जनता को शिक्षित करना चाहते थे। वे मेहनतकश लोगों से प्यार करते थे और उनके लिए अपना जीवन कुर्बान कर देना चाहते थे। जीवन छोटा था, काम बहुत अधिक था। सदियों से सोये भारतीय समाज को जगाना आसान नहीं था। बाहरी दुश्मन से लड़ना आसान था, लेकिन अपने समाज में बैठे दुश्मनों और खुद अपने भीतर पैठे हुए संस्कारों, मूल्यों, रिवाजों के खिलाफ लड़ने के लिए लोगों को तैयार करना उतना ही कठिन था। राहुल जी को एक बेचैनी सदा घेरे रहती। कैसे होगा यह सब। कितना काम पड़ा है! वे एक साथ दो-दो किताबें लिखने में जुट जाते। ट्रेन में चलते हुए, सभाओं के बीच मिलने वाले घंटे-आध घंटे के अन्तराल में, या सोने के समय में भी कटौती करके वह लिखते रहे। लगातार काम करते रहने से उनका लम्बा, बलिष्ठ, सुन्दर शरीर जर्जर हो गया। पर वह रुके नहीं। आखिरी दिनों में तो वे दर्द से फटते माथे पर कसकर पट्टी बांधकर तीन कमरों में बैठे तीन साथियों को टहल-टहलकर एक साथ तीन-तीन किताबें लिखवाते थे। यह सिलसिला तबतक चला जबतक मस्तिष्क पर पड़ने वाले भीषण दबाव से उन्हें स्मृतिभंग नहीं हो गया। याद ने साथ छोड़ दिया। आर्थिक परेशानी ने घेर लिया। पूरा इलाज भी नहीं हो सका और 14 अप्रैल, 1963 को 70 वर्ष की उम्र में मजदूरों-किसानों के प्यारे राहुल बाबा ने आंखें मूंद लीं। लेकिन उन्होंने जो मुहिम चलाई उसे आगे बढ़ाये बिना आज हिन्दुस्तान में इंकलाब लाना मुमकिन नहीं है।

आज जब चौतरफा संकट में जकड़ा हमारा समाज गहरी निराशा, गतिरोध और जड़ता के अंधेरे गर्त में पड़ा हुआ है, जहां पुरातनपंथी मूल्यों-मान्यताओं और रूढ़ियों के कीड़े बिलबिला रहे हैं, और फासीवादी ताकतें तमाम सड़े-गले तौर-तरीकों को जनता पर थोपकर इतिहास के रथ को पीछे धकेलना चाहती हैं ताकि गरीबों-मेहनतकशों की नंगी लूट चलती रहे, तो हमें राहुल बाबा से सीखना होगा। जनता का साथ देने की चाहत रखने वाले बुद्धिजीवियों को इस कठिन राह पर चलने का हौसला राहुल से सीखना होगा और अपने आप को जनता के साथ उन्हीं की तरह जोड़ देना होगा।

झाड़ू से पीटने-न पीटने के बारे में कुछ स्फुट विचार

–आनन्द देव

उस दिन सचमुच वे काफी आहत और दुखी लग रही थीं। उनका मानतवावादी कलेजा चाक हो रहा था। साथ ही, भारतीय संस्कृति की चिन्ता भी उन्हें खाये जा रही थी।

मौका था लखनऊ में, इराक पर अमेरिकी हमले के विरोध में एक प्रदर्शन का और वह व्यथित भारतीय आत्मा विश्वविद्यालय की एक प्राध्यापिका की थी जो नागरिक आज़ादी, मानवाधिकार, साम्प्रदायिकता-विरोध, युद्ध-विरोध आदि मुद्दों पर पर्याप्त सक्रिय रहा करती हैं और राजधानी के अनुष्ठानिक आयोजनों की स्थायी शोभा हैं।

मामला यह था कि अमेरिकी हमला-विरोधी उस प्रदर्शन में हमलोगों ने अपने एक साथी को जॉर्ज बुश के भेस-बाने में, कुछ दानवी धजा देते हुए सजाया था और उसे झाड़ू और जूते से पीटते चल रहे थे। जनता को नफरत के इजहार का यह रूप काफी जँचा। रास्ते में कई ऐसे नागरिक मिले जिन्होंने अनुरोध किया कि उन्हें भी बुश को झाड़ू और जूते से पीटने का अवसर दिया जाये, लेकिन बुश का रूप धरे साथी की सेहत का ख्याल करते हुए हमलोग लगातार विनम्रतापूर्वक ऐसे अनुरोधों को ठुकराते रहे।

लेकिन विरोध-प्रदर्शन के इस तरीके से उक्त शान्तिवादी शालीनतावादी आत्मा काफी दुखी थीं (हालाँकि विरोध की पिनपिनाहट में अपने निजी व्यवहार में वे स्वयं शान्ति व शालीनता को जीर्ण वस्त्र सदृश त्याग देती हैं)। बुश की झाड़ू-पिटाई के अतिरिक्त "साम्राज्यवादी हाथी पगलाया है, खाड़ी में मरने आया है" जैसे आक्रामक नारों से भी उनका मन बिंधा जा रहा था। मोमबत्ती जलाने, मौन विरोध, "शान्ति गुहारवादी" नारों और काली पट्टी से आगे का कोई विरोध-प्रदर्शन वैसे भी उन्हें मर्यादा का उल्लंघन प्रतीत होता है। बार-बार वे जॉर्ज बुश को झाड़ू से पीटते साथियों के पास जाकर कहती थीं कि 'ऐसा मत कीजिए, यह भारतीय संस्कृति के विरुद्ध है।'

सहसा यह सवाल दिल में उठा कि झाड़ू से पीटना यदि भारतीय नहीं तो किस देश की संस्कृति है? अंग्रेजां या किसी और राष्ट्र की भाषा में शायद ही ऐसी कोई लोकोक्ति या मुहावरा हो जिसमें अपमानित करने के प्रतीक के तौर पर झाड़ू से पीटने जैसी किसी क्रिया को लक्षित किया गया हो। लेकिन हिन्दी, भोजपुरी, अवधी, ब्रज, मगधी, बज्जिका, मैथिली, बंगला आदि अधिकांश भारतीय भाषाओं-लोक भाषाओं में झाड़े से पीटने की क्रिया या इससे मिलती-जुलती क्रिया को दर्शाने वाले मुहावरे या लोकोक्तियाँ चलन में हैं। बल्कि मुझे तो लगता है कि दुश्मन को झाड़ू और जूतों से पीटना, और खास तौर पर दुश्मन यदि अत्यन्त घृणित और नीच किस्म का हो तो ऐसा करना, भारतीय जनता की गौरवशाली परम्परा है।

उक्त प्राध्यापिका महोदया ने शायद कभी अपने घर से दलिद्दर नहीं भगाया होगा (आखिर जिसके घर दलिद्दर होगा वही तो भगायेगा!)। शायद उन्होंने हाथों में झाड़ू उठाये सफाई कर्मचारियों के वे जुलूस भी नहीं देखे हैं जो नगरपालिका-महापालिका के अफसरान के दिलों में भीषण भय का संचार करते हैं। "मुँह पर झाड़ू फेर देना", "झाड़ू मारना", "झाड़ू फिराना" आदि आम अभिव्यक्तियों से भी शायद वे परिचित नहीं हैं।

हमारा ख्याल है, जो समाज और मानवता का द्रोही है, उसके प्रतीकात्मक विरोध का सबसे उपयुक्त भारतीय तरीका यही हो सकता है कि उसे झाड़ू और जूते से पीटा जाये। मानवतावाद का अतिरेक इतना भी नहीं होना चाहिए कि हिरोशिमा-नागासाकी, कोरिया, वियतनाम, ईरान और लातिन अमेरिकी देशों से लेकर इराक तक, पर कहर बरपा करने वाले दुनिया के सबसे बड़े आतंकवादी देश के सरगना की प्रतीक की झाड़ू-पिटाई भी अमानवीय लगने लगे।

इसी प्रसंग में मुझे लू शुन का एक निबन्ध याद आ रहा है जिसमें उन्होंने इस प्रश्न पर विचार किया है कि कुत्ता पानी में गिरा हो तो उसे पीटना चाहिए या नहीं। भद्रजनों की धारणाओं के अनेकशः तर्कों से गलत सिद्ध करते हुए लू शुन ने यह विचार प्रकट किया कि कुत्ते को तो हर हाल में पीटना चाहिए, वह पानी में गिरा हो तब भी, क्योंकि पानी में गिरा हुआ कुत्ता दयनीय भले ही दीखे, आप उसे छोड़ दें तो वह बाहर निकलकर फिर आप पर हमला कर सकता है, भौंक सकता है या गंदा पानी आपके ऊपर झटकारता हुआ भाग सकता है। कुत्ता तो हर हाल में कुत्ता ही रहेगा।

चीन के भद्रजन तो पानी में गिरे हुए कुत्ते को पीटने के विरोधी थे, अब उन भारतीय भद्रजनों के बारे में क्या कहा जाये जो कुत्ते को वैसी स्थिति तक में, और प्रतीकात्मक रूप से भी नहीं पीटना चाहते, जब वह अपने सबसे खूँखार रूप में दुनिया की जनता के सामने दाँत निकाले, पंजा ताने खड़ा है।

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी डा. दूधनाथ द्वारा 69, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा वाणी ग्राफिक्स, अलीगंज, लखनऊ से मुद्रित। कम्पोजिंग : कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फाउण्डेशन, लखनऊ।
संपादक मण्डल : डा. दूधनाथ, मुकुल। सम्पादकीय पता : 69, बाबा का पुरवा, पेपर मिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006, सम्पादकीय उपकार्यालय : जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, मऊ।